हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य

[लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी०
के उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध]

लेखक
डाक्टर शंकर लाल यादव
एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशकीय

भारतीय लोकजीवन की पुरातन और अधुनातन मान्यताओं की अभिव्यक्ति यदि एक साथ देखनी हो तो लोकसाहित्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। गीतों, गाथाओं, कथाओं और कहावतों आदि में लोक-संस्कृति की जो धारा बही है, वह अक्षुण्ण और सार्वकालिक है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने पिछले कई वर्षों से हिन्दी भाषी प्रदेश के विशिष्ट क्षेत्रों के लोक-साहित्यिक अध्ययन का प्रकाशन किया है। डाक्टर शंकरलाल यादव का प्रस्तुत अध्ययन "हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य" इसी दिशा में आगे बढ़ा हुआ एक कदम है।

हरियाना, हिन्दी क्षेत्र का सीमान्त प्रदेश है। किसी समय यह प्रदेश आर्य सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र था। पुराण और पुराणेतर साहित्य में इस प्रदेश को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। तात्पर्य यह कि संस्कृति की गरिमा से परिपूर्ण इस प्रदेश का लोकसाहित्य समृद्ध है।

विद्वान् लेखक ने गहन अध्ययन के बाद हरियाना-प्रदेश के विभिन्न रूपों—लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा तथा अन्य प्रकीर्ण साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें ।पाशास्त्रीय प्रमुख विश्लेषणों के साथ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्ष पर भी प्रामाणिक अध्ययन है। परिशिष्ट में एक बृहद् शब्दसूची भी दी गयी है। तीन गीतों की स्वर लिपि भी है।

आशा है, लोकसाहित्य के अध्येताओं के लिये यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी और विद्वत्समाज में समादृत होगी।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

उपोद्‌घात

किसी देश की कृष्टि और संस्कृति का परिचय उस देश के लोकसाहित्य से पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। लोकसाहित्य जन-जीवन का आइना है। इस दर्पण में अनगढ़ जनता की भावनाओं का, सुख-दुखभरी विविध मनोवृत्तियों का प्रतिफलन होता है। नागर साहित्य में भाव और विचारों का प्रकाशन कलात्मक ढंग से, भाषा और कथन शैली के परिष्कार के साथ होता है परन्तु लोकसाहित्य में वह बिना किसी सजावट, बिना किसी बनावट के, स्वतः प्रस्फुटित होता है। लोकसाहित्य वह पौदा है जिसे किसी माली ने न तो सींचा और न काटा छाँटा है; वह तो बिना विशेष परिपोषण के पुष्पित और फलित होता है। इसीलिए इसकी सुगंधि मंद और भीनी होती है। साहित्यिकता, संगीतात्मकता और कलात्मकता का लोकसाहित्य में नागर-साहित्य के समान उत्कर्ष नहीं मिलेगा परन्तु साहित्य, संगीत और कला का मूल प्रेरक स्रोत लोकसाहित्य और लोक-गीतों में ही निहित है। भाषा का मूल रूप भी इसी साहित्य में प्राप्त होता है।

भारतीय जन-जीवन आदि काल से ही अपने सुख-दुख की बात को सहज अकृत्रिम ढंग से लोकसाहित्य के विविध रूपों में प्रकट करता आया है। आदिकाव्य रामायण के रचयिता महर्षि बाल्मीकि लिखित साहित्य के आदि कवि कहे जाते हैं। उनसे पूर्व भी लोक जीवन की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियाँ तत्कालीन जन-भाषा में प्रकट हुई होंगी, परंतु आज उनके आकलन का लिपिबद्ध लेखा नगण्य है। लोकसाहित्य की धारा तब से अब तक भाषा परिवर्तन के साथ बहती चली आ रही है।

पाश्चात्य देशों में लोकसाहित्य का संकलन और उसके अध्ययन का कार्य १६ वीं शताब्दी के आरंभ से ही गंभीरता के साथ होने लगा था। इन्हीं पाश्चात्य मनीषियों से प्रेरणा पाकर हमारे यहाँ लोकसाहित्य का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी में लोकसाहित्य संग्रह का व्यवस्थित कार्य पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने किया। उन की 'कविता कौमुदी' इस दिशा की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। आगे चलकर विश्वविद्यालयों में भी इस साहित्य के अध्ययन का कार्य आरंभ हुआ।

कई वर्ष हुए मैंने अपने निरीक्षण में लोकसाहित्य से संबंधित तीन विषय—भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, अवधी लोकसाहित्य का अध्ययन तथा

बुन्देलखण्डी लोकसाहित्य का अध्ययन—तीन विद्यार्थियों को दिये। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अथक परिश्रम के साथ कार्य करके भोजपुरी लोक-साहित्य पर प्रबन्ध पूरा कर दिया और उन्होंने पी० एच-डी० की उपाधि भी प्राप्त की; परन्तु अन्य दो विषयों पर कार्य पूर्ण न हो सका। ब्रज लोकसाहित्य का, डा० सत्येन्द्र जी का अध्ययन इस समय तक हिन्दी जगत् में आ चुका था। इसी बीच सन् १९५३ ई० में श्री शंकर लाल यादव (अब डॉ० यादव) ने इस विश्वविद्यालय में हिन्दी अनुसंधान के लिए प्रवेश लिया और उन्हें मैंने उनकी अभिरुचि के अनुसार अपने निर्देशन में 'हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य' विषय के अध्ययन का कार्य दिया। डा० यादव हरियाना क्षेत्र में ही एक डिग्री कालेज के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे। उनकी मेधा और उनके उत्साह का परिचय मुझे मिल चुका था। उन्होंने बड़ी लग्न और परिश्रम के साथ यह कार्य सन् १९५७ में पूरा कर लिया और इस कृति पर उन्हें इस विश्व विद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

डा० यादव ने अपने इस शोध-प्रबंध में हरियानी खड़ी बोली के लोक-गीत, लोक-कथा, लोक-गाथा तथा अन्य प्रकीर्णक लोकसाहित्य के रूपों का अध्ययन किया है। इसके साथ ही उन्होंने लोकसाहित्य के रमणीयतम रूप 'लोक-नाट्य' पर भी विशेष प्रकाश डाला है। इस प्रकार का अध्ययन इस कोटि के अन्य अध्ययनों में नहीं है। लोकगीतों में मार्मिकता एवं सहजानुभूति है तथा चित्रात्मकता का कैसा योग रहता है—यह एक मल्होर गीत में, मुझे डा० यादव ने एक समय सुनाई थी, बड़े सुन्दर ढंग से बैठा है :—

जोबण चाल्या छूट कै होलिया लम्बी राह।
क्यूँक्कर पकड़ूँ भाजकै मिरे गोड्याँ म्हें दम नाय॥
मेरी बावली मल्होर।

प्रबन्ध के अन्त में बांगरू खड़ी बोली का एक संक्षिप्त शब्द-कोष भी डा० यादव ने दिया है। मेरे विचार में यह अनुसंधान-कृति रोचकता और उपादेयता, दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि की है। डा० यादव इस समय लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में लोकसाहित्य के विशेषज्ञ प्राध्यापक हैं। उनकी लेखनी से लोक और नागरसाहित्य के अन्य ग्रन्थ भी प्रसूत हों, यह मेरी मंगल कामना है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की ओर से हमने भी कुछ प्रकाशन हिन्दी-संसार के सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रन्थ को भी हम

छापते परंतु हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग (उत्तर प्रदेश) ने इस शोध-प्रबंध के प्रकाशन का कार्य अपने हाथ में लिया है। इसके लिए हम एकेडेमी की सराहना करते हैं। आशा है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन से लोकसाहित्य के अध्ययन की अभिरुचि उद्दीप्त होगी और हिन्दी-जगत् लाभान्वित होगा।

—दीनदयालु गुप्त

डा० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, डी० लिट्०
अध्यक्ष,
हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ,
लखनऊ विश्वविद्यालय

विजयदशमी, २०१७

प्रस्तावना

यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो यथार्थ में लोकसाहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। किसी देश की जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक माप के लिए यदि कोई वास्तविक पैमाना हमारे पास है तो वह उस देश का लोकसाहित्य ही है। यह अपने असंस्कृतरूप में ही आकर्षक, अपनी कच्ची अवस्था में ही मधुर और अपनी हीनस्थिति में ही उच्च तथा महान् है। उसके वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन की हिन्दी में बड़ी कमी रही है। मैंने इस पुस्तक रूप में 'हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य' का अध्ययन प्रस्तुत किया है। समूचे हरियानी लोक वाङ्मय को एक ही स्थान पर छूने की अथवा अनुशीलन की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। मैंने केवल कतिपय नमूने पाठकों के समक्ष रखे हैं। परन्तु जब गुलाब में कंटक है, मयंक में अंक है तब प्रस्तुत कृति में भी पाठकों को कुछ स्खलन एवं त्रुटियाँ मिलें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी, यदि इस पुस्तक से हिन्दी लोकवार्ता साहित्य का तनिक भी उपकार हुआ अथवा नाममात्र को भी किसी अभाव की पूर्ति हुई और साथ ही पाठकों का कुछ भी मनोरंजन हुआ, तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

"एष चेत् परितोषाय विदुषां कृतिनो वयम्"

—शंकरलाल यादव

वक्तव्य

१९४९ की बात है। मैं रेवाड़ी कालेज में हिन्दी प्राध्यापक रूप में पहुँचा। वहाँ पर छात्रावास में रहने तथा स्थानीय निवासियों के सम्पर्क में आने से जनपदीय बोली के साथ मेरा परिचय हुआ। संस्कृत व्याकरण, निर्वचन शास्त्र के अध्ययन और भाषातत्व-विज्ञान की शिक्षा ने मेरे भीतर भाषा के रहस्यों की खोज के प्रति जो आग्रह उत्पन्न कर दिया था उसे अब अपने विकास के लिए क्षेत्र मिला।

मैं अवसर की प्रतीक्षा में था। सौभाग्य से मेरे अनन्य शुभचिंतक, सुहृद् और मुझे साहित्य-क्षेत्र में सतत समुत्साहित किये रहनेवाले अग्रज सदृश रामकंवर जी, एम. ए. (कोसली रेवाड़ी) ने १९५१ के अन्त में मेरी प्रवृत्ति को समझकर एक लोक संवादात्मक नाटक का अभिनय कराया। मैंने यह अनुभव किया कि वे नाटकीय संवाद जो हरियानी बोली में थे, अपेक्षाकृत विशेष आकर्षक थे। इस बोली के संभाषण और गीतों में, राग और रागिनियों में ओजस्विता, सामाजिकता, लोकवार्तातत्व और भाषायीतत्व प्रधानता से उपलब्ध थे। अब मैंने अपने को उस बोली के निकट पाया जिसने आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के निर्माण व विकास में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है और जिसकी इस दिशा में एक मौलिक देन है। ऐसे ही कारणों से मेरी रुचि हरियानी बोली की ओर विशेषरूप से जागरूक हुई। मैंने स्वयं कुछ सामग्री एकत्र की और अपने कुछ छात्रों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया।

१९५२ के मध्य में, लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष डा० दीनदयालु जी गुप्त से मेरी भेंट हुई। मैंने हरियानी बोली के लोकसाहित्य के अध्ययन का अपना विचार उनके समक्ष रक्खा। डा० गुप्त जी ने मेरी प्रार्थना पर विचार किया और सहायता पहुँचाने का आश्वासन ही नहीं दिया, अपितु अपने विश्वविद्यालय में अन्तेवासी के रूप में मुझे खोज-कार्य की अनुमति प्रदान कर कृतसंकल्प भी किया।

अब मेरा विचार हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य का वैज्ञानिक रीति पर अध्ययन करने का था। इसके लिए यह आवश्यक था कि सामग्री सब

प्रकार से यथार्थ एवं विशुद्ध हो। अतः मैंने इस कार्य की यथार्थता के लिए साधारण से साधारण कठिनाई भी उठाकर नहीं रखी है। इस सामग्री को स्वयं उस प्रदेश में घूम-घूमकर मैंने एकत्र किया है और फलस्वरूप कई बार परिव्राजक बनकर हरियाना प्रदेश में भ्रमण करता फिरा हूँ। इस संकल्प का प्रतिशब्द मैंने जनता के मुख से सुनकर लिखा है और संग्रहीत किया है। प्रदेश के तीर्थों, मेलों, मठों और समाधियों पर भी मैंने अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए श्रद्धा के पुष्प चढ़ाये हैं और प्रचुर सामग्री एकत्र की है।

एक कहावत है, "बारह कोस पर पाणी और बाणी बदल जाते हैं।" अतः मैंने बोली के इस सूक्ष्म परिवर्तन को समझ सकने और लिख सकने के लिए अपने पड़ाव प्रायः १८-२० कोस पर लगाये जिससे न्यून से न्यून परिवर्तन भी मेरी पकड़ से नहीं बच सके हैं। मेरे दौरों की कठिनाइयाँ अपना पृथक् अस्तित्व एवं इतिहास लिए हुए हैं। मैं जिस गाँव में जाकर उतरता ग्रामीण जनता के लिए एक कौतूहल की वस्तु बन जाता था। वे न समझ पाते कि एक व्यक्ति जो पढ़ा-लिखा है, संभ्रांत एवं स्वच्छ वेशभूषा धारण किये है, केवल कार्य करता है—हाली-हाली (ग्वाले) से कहानी सुनना, उनका संभाषण सुनना और बूढली (वृद्धा) लुगाइयों के पुरांटे गीत सुनना आदि। अधिकतर जनता मुझे सी० आई० डी० (गुप्तचर) विभाग का कोई अधिकारी समझती और मेरी उपस्थिति को सदैव संदिग्धरूप से देखती। अनुनय करने पर भी वे लोग मेरी बात पर ध्यान न देते और ओले-टोले मारकर मसखरी करके नौ दो ग्यारह हो जाते। वयस्क ग्वालिए अवश्य एक आध अश्लील-सी रागणी सुना देते जो संभवतः उनकी भावी नायिका की रूपरेखा मात्र खींचती थी। ऐसी स्थिति में स्त्री-गीतों को लेखनीबद्ध करने की तो बात ही दूर थी। इस सहज एवं निर्मूल ग्राम-सुलभ आशंका ने मेरे सामने कई बार प्रतिकूल परिस्थितियाँ तक उपस्थित कीं, जिनका वर्णन यहाँ अपेक्षित नहीं है। इतना लिखना तो अवश्य असंगत न होगा कि मुझे कई बार इन प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए वहाँ से खिसकना पड़ा है। अनेक बार निराश कर देनेवाली कठिनाइयाँ आईं, परन्तु 'परदेश कलेस नरेसहुँ को' के साथ धैर्यपूर्वक उन्हें भी सहा है।

अपने उद्देश्य में रत, मैंने मान-अपमान, भूख-प्यास आदि की चिंता न की और अपनी यात्राओं पर बराबर बढ़ता रहा। जनता ने भी मेरी क्षमता तथा साहस को पहचाना। अब कुछ लोग मेरी बात सुनने लगे। कुछ अपनी सतत उपस्थिति, मृदुल स्वभाव एवं सिधाई से मैंने जनता को

अन्ततः अपनी ओर आकर्षित कर ही लिया और उनका भ्रम दूर हुआ। गाँव के सरपंच, स्कूलों के अध्यापक एवं अन्य पेशेवाले लोग मेरे इस कार्य का कुछ-कुछ महत्व पहचानने लगे। इस उद्योग एवं अध्यवसाय से जो निरन्तर चार वर्षों तक चलता रहा, मेरे पास मिलाकर कोई दो सहस्र छोटे बड़े गीत और कई सौ कहानियाँ संकलित हो गईं।

इस संग्रह की मेरी अपनी योजना रही है। खेत-क्यार में कीकड़ की छाया में बैठकर, खेत-रक्षक के मचान पर चढ़कर, घसियारे की गटड़ी पर बैठकर मैंने इसका संचयन किया है। कहानी लिखने में एक कठिनाई यह हुई है कि कई बार इन्हें ग्रामीण बोली में लिख सकना दुष्कर रहा है। यह उस परिस्थिति में हुआ है जब कथक तेजी से बढ़ा है और उसे धीरे-धीरे कहानी सुनाने में कठिनाई हुई है। कई कथकों की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि जब वे कहानी सुनाना आरम्भ कर देते हैं तो उनके कंठ के पट खुल जाते हैं और वे गांडीव के सदृश अप्रतिहत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। एसी स्थिति में कहानी खड़ी बोली में ही लिखी जा सकी है। मेरे इस संग्रह में से लगभग २२५ गीत और १५ कहानियाँ उन बटमारों के हाथ पड़कर नष्ट हो गई जिन्होंने घग्गर के कांठे में मुझे दिन धौले लूट लिया था। एक अधेड़ पुरुष मेरे उस झोले को लेकर चम्पत हो गया जिसमें मेरा रात-दिन का परिश्रम और ग्रामीण नर-नारियों का हृदय भरा हुआ था।

हरियानी लोकसाहित्य संकलन के पश्चात् मैंने हरियानी भाषा के इतिहास तथा विकास, प्रादेशिक संस्कृति तथा अन्यान्य ज्ञातव्य बातों के लिए सामग्री एकत्र की। इसके लिए मैं शिक्षित जनता के सम्पर्क में आया और प्राचीन लेख, हस्तलिखित पुस्तकें तथा ऐसी ही अन्य उपयोगी सामग्री को मैंने खोजा। इस प्रकार इलाके की पूरी जानकारी मुझे हुई।

मेरी अगली योजना की यह विशेषता रही है कि मैंने जोगी, भाट, मिरासी, डूक और भोंपा आदि से लोक-गाथाएं एकत्र कीं। हरियाना प्रदेश के नामीगिरामी रागियों से यहां के प्रसिद्ध राग सुने और लेखबद्ध किये। जींद रियासत के बौंदखुर्द ग्राम के प्रसिद्ध गायक भान्ना जोगी से हरियाने का लोकप्रिय राग 'निहालदे' सुना। मांडौठी ग्राम (रोहतक) के चतरू सूरदास से उसका दूसरा पाठ लिखा। तीसरा पाठ बाबा मंगल भारथी के मुखारबिंद से अधिगत किया। ढाणा खुर्द (हांसी) के श्रीचंद हरिजन के सौजन्य से "गुरु गूगा का साका" प्राप्त किया। नरवाना (पटियाला) से दुर्गा की लड़ाई का किस्सा अथवा "देवी का जुज्झ" लेखबद्ध किया। गोहाणा से

(रोहतक) 'राग राव किसन गोपाल' हस्तगत किया। महम से महमी साधुओं के उदात्तचरित्र वाले अवदान एकत्र किये। दादरी, हिसार, तोषाम और पानीपत से पूरनमल, गोपीचंद भरथरी, रूपवसंत आदि लोक-गाथाओं को हासिल किया। इस प्रकार मैंने हरियाने की सभी मुख्य-मुख्य गाथाएँ एकत्र कीं; परंतु विस्तारभय से केवल तीन गाथाएँ—निहालदे, गुरु गूगा और राग राव किशनगोपाल ही मैंने सविस्तार यहाँ दी हैं। ये सभी राग (गाथाएं) अप्रकाशित हैं, नूतन हैं एवं मौलिक हैं। इस संग्रह का एक राग किस्सा राव किशन गोपाल अभी तक उपेक्षित रहा है। उसे पाठकों के समक्ष रखने का श्रेय प्रस्तुत लेखक को है। यह राग एकदम मौलिक एवं यथार्थ है। पंजाब की लोकगाथाओं के यशस्वी उद्धारक सर आर. सी. टेम्पल ने अपनी पुस्तक 'दि लीजेन्ड्स आव् दि पंजाब' भाग ३ में ५८ गाथाएं संग्रहीत की हैं। उनमें से १७ हरियाने में प्रचलित हैं एवं प्रिय हैं। परंतु हमारे संग्रह के सभी राग (गाथाएं) इनसे पृथक् हैं, अतः सुतरां मौलिक हैं।

इस प्रकार मैंने अनेक यात्राएं करके हरियाना प्रदेश के साथ सान्निध्य स्थापित किया है। मुझे गर्व है कि इस महान् प्रदेश के साथ मैं तादात्म्यलाभ कर सका हूँ। संक्षेप में यही मेरे इस संग्रह का इतिहास है।

संग्रह के उपरांत अपने शोधकार्य को यथासंभव पूर्ण, प्रामाणिक एवं व्यापक बनाने में कोई कमी मैंने नहीं छोड़ी है। इस कार्य के लिए मुझे अनेक सम्पन्न पुस्तकालयों में अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनमें से केन्द्रीय पुरातत्व पुस्तकालय, दिल्ली; केन्द्रीय सचिवालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय प्रमुख हैं। मैंने रोहतक, हिसार, कर्नाल, गुड़गांव, जींद और पटियाला नाभा आदि जिला व रियासतों के सभी गजेटियर देखे हैं। लिखना प्रारंभ करने से पूर्व मैंने लोकवार्ता के धुरीण विद्वान्—फ्रेजर और टेम्पिल (बर्न एवं विशप) विचारक रस्किन और श्री राहुल सांकृत्यायन, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, भारतीय लोकसाहित्य मर्मज्ञ सत्येन्द्र एवं सत्यार्थी, ग्रियर्सन और एलविन, त्रिपाठी तथा मेघाणी, पारीक एवं राकेश और दुबे तथा उपाध्याय आदि सभी विद्वानों के साहित्य का अध्ययन किया है।

इस प्रयत्न से पूर्व इस दिशा में दो कार्य—'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन' तथा 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' क्रमशः डा० सत्येन्द्र एवं डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मेरे देखने में आये हैं। इस निबंध के तैयार करने में मैंने डा० कृष्णदेव उपाध्याय के ग्रन्थ को पथिकृत् रूप में रखा है। यह

ग्रंथ भी पी-एच० डी० के लिये डा० गुप्त के निर्देशन में लिखा गया था। श्री एम० एस० रंधावा की पुस्तक 'हरियाना के लोक-गीत' अभी प्रकाशित हुई है परन्तु वह प्रयत्न साधारण, एकांगी एवं कृशकाय है। उसमें हरियानी लोकसाहित्य के केवल एक रूप-गीतों को ही लिया गया है। अतः यह गर्व के साथ कहा जा सकता है कि प्रस्तुत लेखक का यह कार्य अपने क्षेत्र में मौलिक एवं नूतन है। इस निबन्ध के निर्माण में मेरा अपना मौलिक दृष्टिकोण ही सर्वत्र रहा है। मैंने सामग्री को वैज्ञानिक रूप से जाँच की है और उसके अध्ययन के लिए एक नूतन एवं मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाई है। प्रारम्भ में लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता विषयक विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय में हरियाना प्रदेश के प्रामाणिक इतिहास की खोज की गयी है और उसकी प्राचीन गौरवगाथा को परखा गया है। द्वितीय अध्याय में हरियानी बोली का भाषायी अध्ययन दिया गया है। ऐसा करने में हमारा यह लक्ष्य रहा है कि पाठक हरियानी लोकसाहित्य—गीत, कथा, गाथा तथा विविध साहित्य के रसचर्वण के लिए हरियानी बोली से अभिज्ञता प्राप्त कर लें। हरियानी के स्थान-स्थापन (लोकेशन) के लिए भाषायी मानचित्र दिया गया है जिससे पुस्तक का मूल्य बढ़ा है। इस प्रयत्न को मैं मौलिक एवं खोजपूर्ण समझता हूँ। अगले चार अध्यायों में हरियानी लोकसाहित्य का सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में गीतों के अध्ययन के पीछे 'साहित्यचर्चा' नाम से कलापारखियों के मनोरंजनार्थ एक सूक्ष्म-विवेचन और दिया गया है। अंतिम अध्याय में हरियाना प्रदेश की लोक संस्कृति का चित्र उपस्थित किया गया है। सबसे अंत में एक परिशिष्ट भाग जोड़कर पुस्तक को पूरा किया गया है। इसमें दो हरियानी लोक कहानियां दी गई हैं जिससे हरियानी के रूप-निर्धारण में पाठकों को सरलता होगी। कोषकारो के उपयोग के लिए एक वृहद् शब्द सूची भी दी गई है। इससे हरियानी बोली के शब्द-भंडार का सहज ही ज्ञान हो जायेगा। साथ ही नमूने के तौर पर तीन गीतों की स्वरलिपि भी दी गई है। इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को सभी दृष्टियों से उपयोगी बनाने की चेष्टा की है।

अंत में, एक बात और कह देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत प्रयत्न में मैंने सिद्धांतवादिता की कोई बात नहीं कही है। न मैंने किसी नूतन दिशा की ओर संकेत किया है और न कोई नई थ्योरी ही खोज निकाली है। मैंने तो केवल हरियाना प्रदेश में प्राप्त लोक-साहित्य की साधारण-सी चर्चामात्र की है। मेरा विश्वास है कि लोकसाहित्य अध्येता के लिए यह पुस्तक अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।

साथ ही जिन सज्जनों से मुझे अपेक्षित सहयोग तथा मुंहमाँगी सहायता, आशा एवं उत्साह मिला है उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मैं डा० दीनदयालु जी गुप्त के प्रति आभारी हूँ जिनकी महती कृपा से मैं इस प्रशस्त पथ पर अग्रसर हुआ। गुप्त जी की अनुकम्पा के बिना संभवतः मेरा औत्सुक्य एवं उत्साह कली रूप में ही सीमित रहकर मुर्झाकर सूख जाता। उन्हीं के निर्देशन में यह प्रबन्ध लिखा गया है। डा० भगीरथ मिश्र और डा० सरयू प्रसाद जी अग्रवाल का भी कृतज्ञ हूँ, उन्होंने भी समय-समय पर मुझे मार्ग दिखाया है। इन दोनों सज्जनों के साथ बैठकर कई बार मैंने अपने विषय की विवेचना और आलोचना की है। वैसे तो मेरे सहायकों की नामावली बड़ी लम्बी है, फिर भी कुछ महानुभाव ऐसे हैं जिनका नामोल्लेख किए बिना मैं अवश्य ही अपने कर्तव्य में एक त्रुटि छोड़ जाऊँगा।

इस क्रम में, श्री देवेन्द्र सिंह (छात्र रोहतक) का नाम विशेष रूप से स्मरण रहेगा जिनके यहाँ अब से ५ वर्ष पूर्व इस कार्य का श्रीगणेश हुआ। श्री खजान सिंह चौधरी (रोहतक) मेरे उन छात्रों में से एक हैं जिन्होंने मुझे लज्जाशील महिला जगत् के सब्रीडकंठ से गीत लिखने में सबसे अधिक सहायता प्रदान की। निश्चय ही उनके बिना मेरा यह कार्य इतना सम्पन्न न होता। मैं इनका कृतज्ञ हूँ। पं० जयनारायण जोशी (हांसी) ने मुझे हरियाना प्रदेश में प्रचलित नानाविध अनुष्ठान, संस्कार, आचार, परम्परा एवं विश्वास आदि का साक्षात् ज्ञान कराया। दादरी (जींद रियासत) के पं० जयन्ती प्रसाद व्यास और उनके साथी जैलाल सूरदास ने मुझे भरसक सहायता दी। वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। रोहतक जिले के परिभ्रमण में मेरे एक दूसरे छात्र श्री छोटूराम यादव ने जो मेरी सहायता की है वह स्मरण की वस्तु है। पानीपत में श्री ब्रह्मानंद जी गोयल, प्रधानाध्यापक, स्थानीय जैन हाई स्कूल ने अपने इलाके से जो सामग्री एकत्र करवाई है, वह अमूल्य है। कर्नाल, कैथल, गोहाणा, नरवाणा और जाखल आदि स्थानों के कई हितैषी मेरी सहायक-सूची के रत्न हैं। सौनीपत में भाटों की चौपाल के वे दिन मुझे चिरकाल तक स्मरण रहेंगे जहाँ मुझे कहानियों की अपार निधि मिली है। भिवानी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार श्री कन्हैयालाल जी भिन्डा का मेरे प्रति बड़ा सदयता का व्यवहार रहा है। निःसंदेह, वे मेरे सबसे बड़े सहायकों में से एक हैं। मैं उनके उपकारों से कदापि उऋण न हो सकूँगा। कप्तान राव वीरेन्द्र सिंह जी (रामपुरा) ने अपने पुस्तकालय से अमूल्य सहायता प्रदान की। वे मेरी श्रद्धा के पात्र हैं। श्री एच. पी. पटेल

(नडीयाद) ने मुझे गुजराती भाषा और साहित्य का परिचय कराया है। गायनाचार्य मास्टर श्री राम जी ने कई गीतों की स्वर-लिपि तैयार कर मुझे सक्रिय सहायता प्रदान की। हरियाना प्रदेश के भाषायी मानचित्र तैयार करने में श्री लक्ष्मी नारायण वर्मा, एम. ए., ने जो परिश्रम किया है वह कदापि भुलाया न जा सकेगा। वे धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी पत्नी ने अनेक महिलाओं की सहज सल्लज वाणियों को कागज पर प्रतिष्ठित कर मेरी जो सहायता की है वह अनुपम है। भोरका (हिसार) की श्रीमती कुंती जी का स्नेह भी प्रशंसनीय है जिन्होंने स्त्री-सुलभ लज्जा मिश्रित चाव से तथा निस्स्वार्थभाव से अपने सरस एवं अमूल्य गीतरत्नों से मेरी झोली भरी है। वे धन्यवाद की पात्री हैं।

अंत में, मैं ज्ञात-अज्ञात उन सब सहायकों का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी तनिक भी सहायता की अथवा परदेश में मुझे सुख-सुविधा दी।

—लेखक

विषय-सूची

द्वितीय अध्याय ७९-११९

तृतीय अध्याय १२१-३३६

षष्ठ अध्याय ४०९-४५५

सप्तम अध्याय ४५७-४७५

परिशिष्ट

विषय-प्रवेश

क. लोकसाहित्य का अध्ययन : प्रवृत्ति-पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य तक लोकसाहित्य एक उपेक्षित विषय था। महिलाओं द्वारा गाये गये गीतों को ऊल-जलूल, हुलियारे की होलियों और फागों को अल्लाना, किस्सों को रिक्तमन की वाचालता और दंतकथाओं को शब्दाडम्बर समझा जाता था। बच्चों की तुकबन्दियों को भी निरर्थक शब्द-जंजाल कहा जाता था। परन्तु आज हम उन्हें एक विशेष सम्मान और गौरव व राष्ट्रीय निधि एवं सांस्कृतिक थाती के रूप में पाते हैं।

लोकसाहित्य एक ऐसा विषय है जिसका सम्यग् अध्ययन किये बिना हम किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म व रीति-रिवाज, कला और साहित्य, सामाजिक अभ्युदय एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन नहीं कर सकते हैं। शास्त्र-सम्मत कला व साहित्य से हमें किसी देश विशेष की तत्कालीन सम्मुन्नत संस्कृति का आभास भले ही मिल जाय; परन्तु अमुक संस्कृति कैसे पनपी, इसका संकेत पाना कठिन कार्य है। जबकि लोकसाहित्य के द्वारा यह कार्य सुतरां सुलभ हो जाता है। अतः लोकसाहित्य का अध्ययन बड़ा आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने एक स्थान पर बड़े मार्के की बात कही है कि लोकसाहित्य जनता की सम्पत्ति होने के कारण लोक-संस्कृति का दर्पण है।[1]

लोकसाहित्य के अध्ययन ने संसार को आज एक विशेष प्रकार की जिज्ञासा, कौतूहल तथा आश्चर्यानुभूति में डाल दिया है। इस उपेक्षित लोक-साहित्य सामग्री में हमारी विशाल संस्कृति का पुनीत इतिहास व्यक्त है। हमारे शिष्ट साहित्य का उद्गम-स्रोत भी यही लोकाभिव्यक्ति है और हमारे समुन्नत साहित्य के विकास की जड़ें भी लोकमानस की भावभूमि से ही तत्वग्रहण करती हैं। भारतवासियों का भी जीवन सदा से काव्यमय रहा है और वह लोकसाहित्य से परिपूर्ण है। फलतः भारतीय जीवन के उषःकाल से हमें लोक-साहित्य के दर्शन होते हैं।

लोकसाहित्य किसी एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों द्वारा बनाया नहीं जाता। यह तो समस्त समाज का उल्लास और उच्छ्वास होता है। इसके

---

१. डा० उपाध्याय—'भोजपुरी ग्राम गीत' द्वितीय भाग, वक्तव्य पृष्ठ १।

निर्माण में समग्र समाज का हाथ होता है। यह एक पराम्परागत निधि है जिसे लेखनी ने न कभी संवारा है, न सजाया है और न कदाचित् कभी इसे लेखनी की सहायता ही मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा परन्तु लोकसाहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप से प्रवहवान है।

लोकसाहित्य का अध्ययन करनेवाले अग्रणी विद्वान् यूरोप के हैं। यूरोप में बहुत पहिले से ही लोकसाहित्य पुरातत्व (आरक्यालाजी) और नृ-विज्ञान (एंथ्रापालाजी) के अध्ययन का आवश्यक सहायक रहा है। इस प्रसंग में, विशय परसी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दि के मध्य में पाश्चात्य गीतों के एक प्राचीन संग्रह की खोज की। विशप परसी के उपरान्त प्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट ने अंग्रेजी लोकगीत सौन्दर्य की ओर जनता को आकर्षित किया और अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र उस सामग्री का उपयोग भी किया। इसी शताब्दि के उत्तरार्द्ध में अर्थात् सन् १६८१ ई० में जोहन औब्रे, महोदय ने 'रीमेंस आव् जेंटिलिज्म एन्ड बुडाइज़्म' पर जो विवेचना दी है वह यहूदियों तथा अन्य साधारणजन के विषय में बड़ी पते की बातें बतलाती हैं। १७७७ में जोहन ब्रेंड ने 'आवजर्वेशन आन दि पोपुलर एन्टीकुटीज आव दि ब्रिटिश आइल्स' पर एक पुस्तक लिखकर इस अध्ययन को आगे बढ़ाया। १८वीं शताब्दि में 'रेलिक्स आव इंगलिश पोइट्री' को लिखते समय विशप पीरी ने लोकगीतों को ही स्थान दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दि विश्व के लोकसाहित्य के इतिहास में एक क्रान्तिकारी युग है। इस शताब्दि में लोकसाहित्य के क्षेत्र में कितने ही प्रशस्त एवं विशद उद्योगों का सूत्रपात हुआ है। १८२६ ई० प्रकाशित 'होन महोदय' की 'ऐवरी-डे बुक' में भी लोकसाहित्य सम्बन्धी सम्यक् विवेचना भरी है। आगे चलकर ग्रिम-बंधुओं ने विशेष रूप से जेकबग्रिम ने भाषा-विज्ञान (भाषाशास्त्र) और माइथालाजी (धर्मगाथा) के क्षेत्र में लोकसाहित्य के सिद्धान्त रूप में उपयुक्तता सिद्ध की। इस नव्य भव्य प्रयत्न के कारण जर्मनी के इन विद्वानों का नाम सदा स्मरण रहेगा। इनकी दो पुस्तकें 'किंडर एन्ड हउसमार्खे' और 'दे उत्सके माइथालाजी' क्रमशः सन् १८१२ और १८३५ ई० में प्रकाशित हुईं। इन जर्मन विद्वानों ने अपने इस नये प्रयत्न द्वारा लोकवार्ता जैसी उपेक्षित सामग्री के अध्ययन को एक वैज्ञानिक रूप दिया। इनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक एवं उदार था। ग्रिम-बंधुओं की प्रेरणाओं, मान्यताओं और धारणाओं के उपरान्त इस अध्ययन की ओर अन्य अनेक विद्वानों का ध्यान गया और

जनता में भी एक उत्कट रुचि उत्पन्न हुई।

इस युग तक योरप के विद्वानों का परिचय संस्कृत के साथ हो चुका था। वेदों के अध्ययन ने इस ओर एक नया द्वार खोला। इस वैदिक अध्ययन के द्वारा साहित्य की प्राचीन ग्राम्य सामग्री को परखा गया और उसकी वैज्ञानिक छानबीन की गयी। अभी तक मैक्समूलर आदि प्राग्विद्या-विशारदों का यह विचार था कि लोकवार्ता सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु की वैदिक कसौटी पर परख होनी चाहिए परन्तु यह विचार आगे लोकवार्ता-शास्त्रियों को मान्य नहीं रहा। इसके विपरीत, उन विद्वानों ने यह प्रमाणित किया कि लोकवार्ता की व्याख्या के लिये वेदों की ओर देखने की आवश्यकता नहीं। इस प्रवृत्ति के जनक थे श्री ई० बी० टेलर और सर जेम्स फ्रेजर। टेलर महोदय का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था। स्वयं फ्रेजर महोदय इनके बड़े कृतज्ञ थे। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर कृतज्ञता प्रकाश करते हुए लिखा है कि डा० "ई० बी० टेलर के ग्रंथों के अध्ययन से मेरी रुचि समाज के प्राचीन इतिहास की ओर जाग्रत हुई और मेरे सामने उस लोक के दर्शन हुए जिसका स्वप्न भी नहीं देखता था।[1]" दो अन्य महानुभाव, जिनका प्रभाव फ्रेजर महोदय पर पड़ा, श्री मन्नहार्ट और डब्ल्यू राबर्ट्सन स्मिथ थे। इनकी प्रेरणा के फलस्वरूप १८९० ई० में फ्रेजर महोदय की 'दि गोल्डन बो' जो लोकवार्ता की 'बाइबिल' कहलाती है, प्रकाश में आई। इस ग्रन्थ के कई भाग हैं जो लोकवार्ताशास्त्रियों के लिए बड़े महत्व के हैं। यही वह ग्रन्थ है जिसकी रचना ने लोकवार्ता के अध्ययन में एक नई दिशा दी। वैदिक अध्ययन का लोकवार्ता के प्रति जो आग्रह था वह न रह गया। इनके प्रयत्नों से यह सिद्ध हुआ कि लोकवार्ता की आदिम एवं मौलिक प्रवृत्तियों का संधान असभ्य, अर्द्धसभ्य, अशिक्षित एवं हब्शी लोगों के आचार-विचार, ऐतिहासिक-दशा आदि में होना चाहिए। फ्रेजर महोदय का मत इस ओर बड़ा स्पष्ट है :—

"आर्यों के आदिम धर्म के शोध का कार्य या तो कृषिजीवी लोगों के अंध-विश्वासों (मूढ़ग्राहों), विश्वासों और रीति-रिवाजों से आरम्भ होना चाहिए या उनका उपयोग करते हुए निरंतर उसका संशोधन और नियंत्रण होते रहना चाहिए। जीवित प्रथाओं की साक्षियों के समक्ष पूर्वकालीन धर्म के विषय में प्राचीन ग्रन्थों की साक्षी का विशेष महत्व नहीं है।" फ्रेजर महोदय का कहना है कि लिखित साहित्य के द्वारा विचार-पद्धति इतनी तीव्रता से आगे बढ़ती है कि यह साधारण जन के कंठ से प्रचारित मत और

---

१. 'दि गोल्डन बो' की भूमिका लेखक श्री जेम्स फ्रेजर।

विश्वासों को बहुत पीछे छोड़ जाती है। फ्रेजर महोदय के सतत तथा सफल उद्योगों के परिणामस्वरूप लोकवार्ता-विशारदों की दृष्टि आर्यक्षेत्र के बाहर भी गयी और विस्तृत हुई। श्री ऐंड्र लैंग ने इस अध्ययन-क्षितिज को और भी दीप्ति प्रदान की। परिणाम-स्वरूप अंधविश्वास आदि धार्मिक तत्व इस आदिम समाज में आदिकाल से ही पोषित हुए। इनका अध्ययन मानव-इतिहास की नींव तक पहुँचने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है और होगा भी। यह नृ-विज्ञान और समाज-विज्ञान की उन गुत्थियों के सुलझाने में समर्थ होता है जो अभी तक जटिल बनी हुई हैं।

उपरोक्त पाश्चात्य प्रयत्नों के अतिरिक्त आज भी पश्चिम के विद्वान प्रयत्नशील हैं। इस ओर सबसे अधिक सचेष्ट और संयत प्रयत्न आधुनिक-काल में अमेरिका के कुछ अध्यवसायी विद्वानों ने किया है। उनमें प्रो० एफ० जे० चाइल्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय एवं प्रख्यात है जिन्होंने इंगलैंड और स्काटलैंड के एक-एक लोकगीत को बड़ी छानबीन के साथ खोजा है और उनकी अन्य देशों के गीतों के साथ तुलना की है। इन प्रयत्नों पर अंग्रेजी साहित्य को गर्व है।

उपरोक्त वर्णन उन उद्योगों का है जिनके द्वारा योरप और अमेरिका में लोकवार्ता का कार्य बढ़ा और विकसित हुआ। सौभाग्य से इसकी लहर भारत में भी आई क्योंकि जिन दिनों लोकवार्ता सम्बन्धी प्रयत्न पश्चिम में हो रहे थे, भारत का सम्बन्ध भी पश्चिम से बढ़ रहा था। भारत की लोकवार्ता पर भी इनकी दृष्टि पड़नी स्वाभाविक थी। फलतः टॉड महोदय ने 'एनाल्स आव राजस्थान' लिखते समय राजस्थान के इतिहास के लिए बहुत-सी लोक-वार्ताओं का आश्रय लिया तथा उसका भरपूर उपयोग किया। किसी लिखित इतिहास के अभाव में बहुत सी मुख-परम्परागत सामग्री को आधार बनाया गया। उसकी जाँच की गई और तथ्यपूर्ण सामग्री का यथोचित उपयोग भी किया गया। सामयिक विश्वासों एवं रीति प्रथाओं का पर्याप्त वर्णन टॉड-राजस्थान में मिलता है। अतः पक्षपातरहित होकर यह कहा जा सकता है कि टॉड महोदय ही भारत के सर्वप्रथम लोकवार्ता-संग्राहक हैं। टॉड के बाद लगभग ५० वर्षों तक भारत में इस दिशा में कोई स्तुत्य प्रयत्न नहीं हुआ। फिर सन् १८८४ में सर आर० सी० टेम्पल महोदय (तत्कालीन पंजाब में कमिश्नर) ने 'लीजेन्ड्स आव दि पंजाब' तीन भागों में प्रकाशित कराके इस उपेक्षित सामग्री की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने एक विशिष्ट लग्न एवं अध्यवसाय के साथ पंजाब भर के किस्सों का (गाथाओं और अवदानों का) संग्रह किया। इन पुस्तकों की भूमिका में सर टेम्पल ने बड़े

पते की बातें बतलाई हैं। उन्होंने प्रथम भाग की भूमिका में लिखा है कि ये अपनी आफिशियल ड्यूटी से समय निकालकर स्थानीय मेलों-ठेलों में जाते, विवाहादि उत्सवों में सम्मिलित होते और रात-रात भर जागकर नौटंकी और स्वांगों को भी देखते थे। इन्होंने बहुत से किस्से[1] कहनेवालों को महीनों तक पैसे देकर लिखवाने का कार्य किया। सन् १८६६ ई० में रैवरेंड एस० हिस्लप के वे लेख जो मध्यभारत की आदिम जातियों के सम्बन्ध में थे, प्रकाशित हुए। सर टेम्पल से सन् १८६८ में मिस फ्रेयर ने 'ओल्ड डैकनडेज़' नाम का एक लघु संग्रह प्रकाशित कराया था। इसके तीन वर्ष पश्चात् सन् १८७१ में डाल्टन महोदय की 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बंगाल' का प्रकाशन हुआ। इन्हीं दिनों भारतीय पुरातत्व और इतिहास की सामग्री को लेकर चलनेवाली एक सुप्रसिद्ध पत्रिका 'इंडियन एंटिक्वेरी' में बहुत-सी लोकवार्ता सम्बन्धिनी सामग्री छपनी आरंभ हुई। रेवरेंड लालबिहारीडे की 'फोक्टेल्स आव बंगाल' सन् १८८३ में प्रकाशित हुई। अगले वर्ष अर्थात् सन् १८८४ में टेम्पल महोदय के वे तीन ग्रंथ निकले जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सन् १८८५ में श्रीमती एफ० ए० स्टील की वे कहानियाँ प्रकाशित हुईं जिनका संग्रह 'वाइड अवेक स्टोरीज़' के नाम से हुआ है। इस पुस्तक के प्रकाशन का सौभाग्य भी सर टेम्पल को ही है। नटेश शास्त्री ने 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' लिखकर इस प्रयत्न में सहयोग प्रदान किया है।

सन् १८९० में डब्ल्यू० कुक ने 'नार्थ इंडियन नोट्स एन्ड क्वेरीज़' नाम से एक स्वतंत्र पत्रिका निकालनी प्रारम्भ की। इनके साथ ही रेवरेंड ए० कैम्बल तथा रेवरेंड जे० एच० नोलीज के सदुद्योगों से संथालों की और काश्मीर की कहानियाँ पाठकों के सामने आईं। आर० एस० मुकर्जी की 'इंडियन फोकलोर', श्रीमती ड्रकौर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स', रेवरेंड सी० स्विनर्टन की 'रोमांटिक टेल्स फ्रोम पंजाब' लोकवार्ता की महत्वपूर्ण सामग्री-से-भरी पड़ी है। श्री जी० एच० बोम्पस और रेवरेंड ओ० बौडिंग का नाम 'संथाली' कहानियों के साथ सदा स्मरण रहेगा। एम० कुलक की 'बंगाली हाउस होल्ड टेल्स' और श्रीमती शोभना देवी की 'ओरिएन्ट पर्ल्स' की लोकवार्ता सम्बन्धिनी महत्ता कितनी है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। पार्थर महाशय द्वारा प्रकाशित 'विलेज फोक टेल्स आव सीलोन' के

१. 'किस्सा' पंजाब का एक व्यापक शब्द है जो किसी कहानी, सांग, गाथा और अवदान आदि के लिए प्रयुक्त होता है। प्रायः लघु-गीत को छोड़कर शेष समस्त लोकवार्ता के लिए इसका प्रयोग देखा जाता है। गाथा शब्द के लिए राग भी प्रचलित है।

तीन भाग किस लोकवार्ता-अध्येता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं करते ? पेंजर और टानी द्वारा प्रकाशित कथासरित्सागर लोक वार्ता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। यह कथाशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस सम्बन्ध में भारत के लब्धप्रतिष्ठ नृ-विज्ञानवेत्ता शरच्चंद्र राय का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता। इन्होंने अपनी खोज में प्राचीन कहानियाँ दी हैं। ग्रिगसन महोदय का नृ-अध्ययन भी प्राचीन कहानियों के विश्लेषण का परिणाम है। 'इंडियन फेबिल्स' के कर्ता 'रामस्वामी राजू' का नाम भी उल्लेखनीय है। अपने इस संग्रह में उन्होंने सौ भारतीय कहानियों को स्थान दिया है। जी० आर० सुब्राह्मिया पंतालु का 'फोकलोर आव दि तेलगूज़' 'प्रौढ़ तथा साहित्यिक आलोचना से पूर्ण एक अनुपम संग्रह है। मारिस ब्लुम फोल्ड, नार्मन ब्राउन, रूथ नार्टन, एम० बी० एमेन्यू आदि अमेरिकन लोकवार्ताशास्त्रियों का भी नाम इस ओर आता है। इन्होंने और उपन्यासकार स्कॉट ने जिसका उल्लेख प्रथम पृष्ठों में हो चुका है, लोककथाओं और लोकगीतों के अध्ययन की एक बिल्कुल नवीन तुलनात्मक प्रणाली स्थापित की है।

आजकल भारतीय लोकवार्ताशास्त्र के प्रमुख विद्वान नृ-शास्त्री डॉ० वैरियर एलविन हैं जिन्होंने मुंडा और संथाल आदि आदिम जातियों पर विशेष कार्य किया है। चाइल्ड और रिचार्ड महोदय का नाम और काम भी स्तुत्य है। किन्तु इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखने योग्य है कि उपरोक्त जितने भी उद्योग एवं प्रयत्न इस ओर हुए हैं वे सब अंग्रेजी को माध्यम बनाकर चले हैं। फिर भी ये सभी भारत में लोकवार्ता क्षेत्र के अग्रणी हैं और इनकी प्रेरणा से बहुत-सा कार्य हुआ है।

लोकवार्ता के अन्तर्गत लोकगीतों का भी संग्रह एवं अध्ययन हुआ है। सन् १८७२ में श्री सी० आई० गोवर ने 'फोक्सांगस् आव सदर्न इंडिया' को प्रकाशित कराया। श्री तोरुदत्त का 'एंशियेंट बैलेड्स एन्ड लीजेन्ड्स आव हिन्दुस्तान' सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ। सर टैम्पल महोदय ने जिनका उल्लेख पहिले पृष्ठों में हो चुका है 'लीजेन्ड्स आव दि पंजाब' में गीत ही संग्रहीत किये हैं जो बड़े-बड़े गीत रूप में 'किस्सा' कहलाते हैं।[1] क्षितिमोहन सेन का बंगला में 'दारामणि' नाम का संग्रह विख्यात है। 'मैमनसिंह गीतिका' में

---

१. हरियाना में बड़े-बड़े गीत किस्सा के नाम से पुकारे जाते हैं जिन्हें दूसरा नाम अवदान अथवा गाथा दिया जाता है।

भी बंगाली गीत ही संग्रहीत हैं। झबेरचंद मेघाणी द्वारा प्रकाशित 'रढ़ियाली रात' ३ भाग, रणजीतराव मेहता के 'लोकगीत', नर्मदाशंकर लाल 'शंकर' के 'नागर स्त्रियों माँ गवातागीत' आदि गुजराती की महत्वशाली पुस्तकें हैं। संतराम के 'पंजाबी गीत' पंजाबी भाषा के गीतों का उत्तम संग्रह है। मारवाड़ी भाषा के गीतों के कई संग्रह प्रकाशित हुये हैं जिनमें मदनलाल वैश्य की 'मारवाड़ी गीतमाला' निहालचंद वर्मा के 'मारवाड़ी गीत' तथा ताराचंद ओझा का 'मारवाड़ी स्त्रीगीत संग्रह' विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तो इस क्षेत्र के प्राण हैं जिन्होंने भारतभ्रमण करके लोकवार्ता की अमूल्य राशि का संग्रह किया है।

हिन्दी में इस प्रयत्न का श्रीगणेश श्री मन्नन द्विवेदी ने किया। उनकी 'सरवरिया' पुस्तिका इस दिशा की प्रारम्भिका के रूप में है। सरस्वती में प्रकाश पाकर संतराम जी के 'पंजाबी लोकगीत' हिन्दी की निधि बने। इनके पीछे हिन्दी लोकगीतों के कर्मठ शोधक पं० रामनरेश त्रिपाठी इस क्षेत्र में अग्रणी बने। कविता-कौमुदी के पांचवें भाग में उत्तर प्रदेश के सभी प्रकार एवं रंगों के ग्राम-गीतों को स्थान मिला है। हिन्दी के क्षेत्र में त्रिपाठी जी का यह सर्वप्रथम व्यापक उद्योग था। इनके प्रयत्नों से प्रेरणा पाकर तथा इस ओर बढ़ती अभिरुचि को देखकर हिन्दी लोकवार्ता के अनेक सच्चे सेवक उत्पन्न हुये और परिणाम-स्वरूप हिन्दी और उसकी बोलियों में पर्याप्त कार्य हुआ। राजस्थानी-गीतों के बड़े उत्तम संग्रह स्वर्गीय प्रो० सूर्यकरण जी पारीक, ठा० रामसिंह और श्री नरोत्तम स्वामी जी के प्रयत्न स्वरूप प्रकाशित हुए हैं। ठा० रामसिंह एवं श्री नरोत्तम स्वामी जी ने 'ढोलामारू रा दूहा' को लिपिबद्ध कर इस मरणासन्न निधि को अमर बना दिया है। स्वामीजी तथा प्रो० सहल कन्हैयालाल जी के सदुद्योगों से 'राजस्थान पत्रिका' अंग्रेजी के 'इंडियन एंटिक्वेरी' के नमूने पर निकल रही है। इस पत्रिका में पुरातत्त्व के साथ लोकवार्ता की भी चर्चा रहती है। विद्यापति के पश्चात् मिथिला की माधुरी को हिन्दी जगत् के समक्ष लानेवाले की श्री राम इकबाल सिंह राकेश इस ओर अच्छे लोकगीत संग्रहकर्ता हैं जिनकी की 'मैथिली लोकगीत' पुस्तक हिन्दी-सम्मेलन से प्रकाशित हुई है। लोकवार्ता की बहुत-सी सामग्री 'हंस' और 'विशालभारत' पत्रिकाओं में इधर-उधर छपी है। श्यामाचरण दुबे का 'छतीसगढ़ी लोकगीत' इस विषय का सुन्दर संग्रह है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय के 'भोजपुरी लोकगीत', २ भाग हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की एक विशेषता सर्वोपरि है कि गीतों की व्याख्या बड़ी ही अनुपम दी गयी है। आदि में एक सारपूर्ण भूमिका ने ग्रंथों

का मूल्य द्विगुणित कर दिया है। डा० उपाध्याय को 'भोजपुरी लोक साहित्य' पर लिखे गये विशिष्ट निबंध (थीसिस) पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि मिली है। यह निबन्ध डा० दीनदयालु गुप्त के निर्देशन में लिखा गया था। बुन्देलखण्ड में तो पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी की प्रेरणा से बहुत-सा कार्य हुआ है। शिवसहाय चतुर्वेदी जैसे महान् लोकवार्ता संग्रहकारों ने बुन्देलखंडी लोकवार्ता का उद्धार किया है। इनकी बुन्देलखंडी लोक-कहानियाँ एक सुन्दर भूमिका के साथ छपी हैं। श्री कृष्णानन्द गुप्त के अध्यवसाय एवं प्रयत्न स्वरूप टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड) से 'लोकवार्ता' नामक त्रैमासिक पत्र, अंग्रेजी की 'फोक्लोर मैगजीन' के आदर्श पर निकालना आरंभ हुआ था। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी जनपदीय साहित्य के अध्ययन की ओर विशेष प्रेरणा दी है। उनकी 'पृथ्वीपुत्र' नामक पुस्तक इस दिशा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। डा० अग्रवाल ने लोकवार्ता को भारतीय दृष्टिकोण से देखा और परखा है। स्वतंत्र पुस्तकों के अतिरिक्त डा० अग्रवाल ने अनेक ग्रंथों की भूमिका के रूप में भी अपने लोकवार्ता संबंधी विचार जनता के समक्ष रखे हैं। डा० सत्येन्द्र जी ने 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन', ब्रजलोक कहानियाँ और इस विषय संबंधी अनेक लेखों द्वारा हिन्दी लोक-साहित्य-संग्रह को समृद्ध किया है। डा० सत्येन्द्र जी के साथ ब्रज-साहित्य मंडल को नहीं भुलाया जा सकता। यह मण्डल ब्रजलोकवार्ता का विज्ञान-सम्मत विवेचन एवं अध्ययन करने में जुटा हुआ है। इस प्रकार के साहित्य मंडलों की प्रत्येक देश व जनपद के लिए महती आवश्यकता है जो तद्देश-जनपदीय लोकसाहित्य के संग्रह एवं संरक्षा का कार्य करें और उस संग्रहीत सामग्री के आधार पर एक विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करें।

लोकवार्ता संबंधी इस संक्षिप्त सारणी से यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी की विविध बोलियों में लोकवार्ता संबंधी कार्य हो रहा है। जो कुछ लोकवार्ताएँ अभी तक प्रकाश में आई हैं उनके अवलोकन से यह बात प्रतीत होती है कि सभी प्रदेशों में बाहिरी आवरण के पीछे एक मूल-तत्व के दर्शन होते हैं। सभी लोकवार्ताएँ किसी एक स्थान पर मिलती दीख पड़ती हैं जिससे एकतत्व ही सर्वत्र प्रवहवान है अथवा मानवीय ऐक्य का अनुमान सुलभ है। जहाँ तक समानता का संबंध है, हिन्दी ही की लोकवार्ता क्यों, समस्त संसार की वार्ताएँ किसी एक ही दिशा की ओर आती-जाती दिखाई पड़ती है। लोकवार्ता का वह साम्राज्य है जहाँ न किसी धर्म की प्रधानता है, न किसी रंग और जाति का प्राबल्य। यह साम्राज्य यथार्थ में वह समुदाय विहीन (सैक्युलर) है जहाँ प्रत्येक बात मानव द्वारा मानव के लिए और मानव की बनकर कही

गयी है। यहाँ विशुद्ध मानवता का शासन है। यहाँ नीच-ऊँच, छोटे-बड़े, गोरे-काले, पौर्वात्य-पाश्चात्य, उदीच्य एवं दाक्षिणात्य सब एक समान रहते हैं। लोकवार्ता ने पुष्ट कर दिया है कि मानव-मानव का हृदय, विचार और भावनाएँ एक जैसी हैं विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक।

ख. लोकवार्ता एवं लोकसाहित्य

अ. प्रयोग की समस्या

लोकवार्ता अंग्रेजी के फोक लोर (Folk Lore) शब्द का पर्यायवाची है। हिन्दी में इसके प्रचार का अधिकांश श्रेय श्री कृष्णानन्द जी गुप्त एवं डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल को है।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक इस क्षेत्र के अध्ययन का नाम सार्वजनिक पुरातत्त्व (पापुलर एन्टीक्वटीज़) था। सर्वप्रथम सन् १८४६ में श्री विलियम जोहन थामस ने इसे नया नाम फोकलोर दिया। फोक शब्द ऐंग्लो-सैक्सन शब्द 'Folc' का विकसित रूप है। डा० वार्कर ने 'फोकशब्द' को समझाते हुए लिखा है कि 'फोक' से किसी सभ्यता से दूर रहनेवाली पूरी जाति का बोध होता है या यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाये तो सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। पर 'फोकलोर' के संदर्भ में फोक का अर्थ असंस्कृत लोग है। दूसरा शब्द लोर (Lore) ऐंग्लो-सेक्सन 'Lar' से निकला है और इसका अर्थ होता है वह जो सीखा जाये। इस प्रकार 'फोकलोर' का शाब्दिक अर्थ है 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।[१]

फोकलोर शब्द के पर्याय हिन्दी शब्द के ऊपर जब गंभीर विचार करते हैं तो फोक शब्द के लिए हिन्दी में तीन शब्दों का प्रयोग मिलता है—लोक, जन और ग्राम। अंग्रेजी फोक शब्द के लिए हिन्दी का 'लोक' शब्द बहुत प्रचलित है एवं प्रिय है। पर हिन्दी 'फोकसांग्स्' के प्रथम संग्रहकर्ता पं० रामनरेश त्रिपाठी 'फोकशब्द' के लिए 'ग्राम' शब्द पर विशेष बल देते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में सर्वत्र ग्राम शब्द का ही प्रयोग किया है। यथा—ग्रामगीत, ग्रामसाहित्य आदि।[२] डा० मोती चंद जी ने 'फोक' के लिए जनशब्द के प्रति आग्रह किया है।

---

१. देखिए डा० भोलानाथ तिवारी का लेख 'लोकायन और लोकसाहित्य' सम्मेलन पत्रिका, सं० २०१०

२. देखिये जनपद खंड १, अंक १, त्रिपाठी जी का लेख।

गंभीर विवेचन के लिए पहिले हम ग्राम शब्द को लेते हैं। इस शब्द में वस्तुतः फोक की विशाल भावना नहीं आ पाती। यदि हल्का आवरण उठाकर देखें तो नगर में भी फोक की स्थिति है। सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। इस प्रकार ग्राम और पुर का इसमें भेद नहीं है। दूसरा शब्द जन है। यह 'जनि' धातु से बना है जिसका अर्थ है उत्पन्न होना। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले (जन्मने वाले) सभी लोगों का बोध इस शब्द से हो जायेगा। अति प्राचीन काल से यह शब्द इस अर्थ का द्योतक रहा है। पृथ्वीसूक्त में जन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में मिलता है यथा 'जनं विभ्रती बहुधा विवाचसम्, जानपद शब्द से भी जन शब्द के व्यापक अर्थ की ध्वनि निकलती है। वैदिक युग में 'जानराज्य' जनता के प्रिय राज्य को बताया गया है। ब्राह्मणग्रंथों, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य में भी जन शब्द प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जनप्रवाद, जनपद तथा जनाश्रय आदि शब्दों में भी जन की वही ध्वनि है। पर साथ ही साथ जन शब्द का एक दूसरा अर्थ भी लगा चलता रहा है जो भक्त के अर्थ में आगे चलकर रूढ़ हो गया। महाभारत काल में गीता में कृष्ण के लिए जो जनार्दन विशेषण आता है वह इसी अर्थ का पोषक है। इस शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है 'जनं भक्तं अर्दयति रक्षति' इति जनार्दनः। उदाहरण—'निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन'।[1] हिन्दी के भक्ति-साहित्य में तो जन शब्द 'भक्त' का पर्यायवाची ही बन गया है। 'हरिजन जानि प्रीति अतिबाढ़ी' (हरि का दास) (भक्त) जानकर प्रीति बढ़ी 'जन-रंजन भंजन खलव्राता। वेद धर्म रक्षक सुरत्राता।—(सुन्दरकांड)

लोक शब्द का प्रयोग भी बह्वर्थी है। इस शब्द की व्युत्पत्ति धातुद्वय से 'लोकृ दर्शने' और 'रुच् दीप्तौ' से संभव है। पर इस क्षेत्र में पाणिनी-वैयाकरण एवं पाश्चात्य भाषाविज्ञान-विशारदों में मतैक्य नहीं है। व्युत्पत्ति विषयक अर्थ को अलग रखते हुए प्रयोग से इसका एक अर्थ और भी मिलता है। इस शब्द का अर्थ स्थानवाची भी अवश्य है। ऋग्वेद में इसी अर्थ में इसका प्रयोग आया है। 'देहिलोकम्' का अर्थ है 'स्थान दो'। भुवन अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है यथा—इहलोक, त्रिलोक एवं चतुर्दशलोक आदि। लोक का एक विशिष्ट अर्थ वेद-विरोधी भी है। 'लोके वेदे च' की बात उसी समय से चली है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' वेदेतर संस्कृति की संकुचित सीमा को तोड़कर ऊपर उठ गया है, उसकी भावना वैदिक और अवैदिक दोनों तत्त्वों को सहज रूप से छूने लगी है। अतः वेद के तुल्य ही

१. गीता, अध्याय १, श्लोक ३६।

यह शब्द स्वतंत्र एवं संमान्य अस्तित्व का अधिकारी हो गया है। यथा 'लोक सभा' आदि शब्दों में अशोक के शिलालेखों के देखने से पता चलता है कि उस समय लोक शब्द से सामान्य जीवन का अभिप्राय लिया गया है। यह प्रयोग 'अनुवत्तरं सर्वलोक हिताय' से सुस्पष्ट है। बौद्धधर्म के प्रचार के साथ ही लोक शब्द में 'मानवमात्र' की भावना का उद्भव हुआ। प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के 'लोगजत्ता' (लोकयात्रा), 'लो अप्पवाय' (लोक प्रवाद) आदि शब्द लोक की महत्ता प्रदर्शित करते हैं।

इस प्रकार हमने देखा है कि 'ग्राम' शब्द सीमित है, जन अपेक्षया 'फोक' के निकट है परंतु 'लोक' में 'लोके वेदे च' से लेकर 'लोक कि वेद बड़ेरो' तक शुद्ध 'फोक' की भावना मिलती है। निष्कर्षतः लोक ही फोक का प्रतिशब्द ठीक बैठता है।

'फोक' के लिए भारतीय शब्द लोक निर्णीत हो चुकने पर 'लोर' के लिए भारतीय प्रतिशब्द की समस्या शेष रहती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है लोर एँग्लो-सैक्सन (Lar) से निकला है और इसका अर्थ होता है 'वह जो सीखा जाये' अर्थात् 'ज्ञान'। इस प्रकार 'फोकलोर' का शाब्दिक अर्थ होगा 'लोक ज्ञान'। साथ ही साथ 'जो सीखा जाये' इस अर्थ की विवेचना करते-करते 'फोकलोर' के लिए अनेक शब्दों की उद्भावना हो आती है। यथा—लोकज्ञान, लोक-विज्ञान, लोकशास्त्र, लोकपरंपरा, लोकप्रतिभा, लोकप्रवाह, लोकपथ, लोक-विधान, लोकसंग्रह, लोकपुराण, लोक आगम आदि[1]। पर इन शब्दों में किसी में भी मुकम्मिल भाव आद्योपांत अनुस्यूत नहीं मिलता। अतः इस समस्या को सुलझाने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयुक्त शब्दों का विवेचन अपेक्षित है। सर्वप्रथम डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने 'फोकलोर' शब्द का पर्याय 'लोकवार्ता' खोजा है। उन्हें यह वार्ता शब्द 'वल्लभ सम्प्रदाय' में प्रचलित निजवार्ता, घरूवार्ता, ८४ वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता आदि में मिला है[2]। इस शब्द के अपनाने के प्रति श्री कृष्णानन्द जी गुप्त का भी आग्रह है। उन्होंने बुन्देलखण्ड के लोकवार्ता पत्र के निवेदन में लिखा है—"लोकवार्ता को अंग्रेजी में 'फोकलोर' कहते हैं। अथवा यह कहिए कि फोकलोर के लिए हमने लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोक-लोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। परन्तु

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी का लेख 'सम्मेलन पत्रिका' सं० २०१०

२. डा० सत्येन्द्र—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, विषय-प्रवेश, पृष्ठ १।

हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश (जनपद) की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है।"

परन्तु इस शब्द को स्वीकार करने में विद्वानों को कई आपत्तियाँ हैं। प्रथम, यह शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं है। लोकवार्ता में तो अधिक से अधिक लोककथा का भाव वहन करने की क्षमता है। देशीय प्रयोग में चिट्ठी-पत्री की भाँति कथावार्ता का प्रयोग होता है जिससे यह स्पष्ट है कि कथा और वार्ता पर्यायवाची शब्द हैं। डिंगल में भी इस शब्द की यही स्थिति है। वहाँ पर भी बारता अथवा वारता का प्रयोग कथा के अर्थ में ही होता है। दूसरे, संस्कृत साहित्य में इसका अर्थ 'अफवाह' या 'किंवदन्ती' भी मिलता है[1]। प्रसिद्ध संस्कृत कोशकार आप्टे महोदय ने लोकवार्ता का अर्थ 'पापुलर रिपोर्ट' या 'पब्लिक र्‌यूमर' दिया है। परन्तु इस समस्या के सुझाव के लिए 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' का मत भी देख लेना समीचीन होगा। इस विश्वकोष में 'फोक्लोर' शब्द का इतिहास बतलाते हुए लिखा है कि "सन् १८४६ में डबल्यू० जे० थामस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीतिरिवाजों तथा मूढ़-ग्राहों की अभिव्यक्ति करने के लिए गढ़ा था। शब्दों के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं होते, प्रयोग द्वारा होते हैं।[2]" अतः परिभाषाओं और कोषकारों को छोड़कर प्रयोग देखना चाहिए। लोकवार्ता के संपादक श्री कृष्णानंद जी गुप्त ने तो सुस्पष्ट शब्दों में कहा है कि जनता जो कुछ कहती और सुनती अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। इस स्थापना को स्वीकार करते हुए लोकवार्ता शब्द बड़ा व्यापक बन जाता है और फोक्लोर का समीचीन पर्याय हो जाता है।

लोकायन शब्द फोक्लोर का भारतीय प्रतिशब्द है। यदि इस शब्द को परखा जाये तो यह बड़ा सुन्दर शब्द निकलेगा। इसमें 'अयन' शब्द रामायण की भाँति 'घर' अथवा 'सर्वस्व' के रूप में प्रयुक्त माना जायेगा और इसका अर्थ होगा—'लोक का घर' अथवा 'लोक का सर्वस्व।' अतः इस शब्द की परिधि में वह सब कुछ आ जायेगा जो जनता कहती है, सुनती है अथवा उसके

---

१. श्री द्वारका प्रसाद शर्मा—'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ'।

२. ऐनसाइक्लोपीडियाब्रिटेनिका—पृष्ठ ४४६, वायलूम ९।

विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है। शब्दान्तरों में यह लोक की रामायण है। जैसे रामायण राम के सब कुछ को लेकर चली है ठीक उसी प्रकार 'लोकायन' शब्द भी लोक के सर्वस्व को अपने में समेटे हुए है। अतः यह शब्द भी लोकवार्ता की भाँति व्यापक एवं ग्राह्य है। परन्तु लोकवार्ता शब्द हिन्दी में प्रयोग बल से अपना स्थान निर्धारित कर चुका है। नवीन शब्दों के सुझाव और आग्रह से लोकवार्ता के प्रति जमी हुई आस्था कम नहीं हो सकती। अतः सुविधा के लिए फोक्लोर शब्द का भारतीय प्रतिशब्द लोकवार्ता ही सर्वश्रेष्ठ एवं मान्य है। हमारे विचार से भी यही उपयुक्त एवं ग्राह्य है।

अन्य अनेक विद्वानों ने भी इस दिशा में विविध सुझाव दिये हैं। उन पर विहंगम दृष्टिपात करना भी अप्रासंगिक न होगा। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने 'फोकलोर' के लिए 'ग्राम साहित्य' शब्द स्वीकार किया है किन्तु यह शब्द अव्याप्तिदोष दूषित है। डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने इस प्रसंग में 'लोक-संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया है।[१] परन्तु यह 'फोककलचर' का ही पर्याय बन सकता है 'फोकलोर' पृथक् रह जाता है।

भाषा तत्वविद् डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने 'फोकलोर' के लिए भारतीय प्रतिशब्द 'लोकयान' दिया है। वे कहते हैं—"यान का प्रचलित अर्थ वाहन या सवारी है पर उसका एक अर्थ जाना या चलना भी है। सचमुच लोक जीवन फोकलोर के साथ, उसके सहारे और उस पर चलता है। इन दृष्टियों से 'लोकयान' में बिना किसी प्रकार की खींचातानी के 'फोकलोर' के अन्तर्गत आने वाली सभी बातें आजाती हैं।[२]" किन्तु इस शब्द की परिधि में विश्वास, रीति-रिवाज और अंधविश्वास (मूढ़ग्राहों) का ही समावेश हो सकता है। लोकवाणी का विलास इसके बाहर पड़ेगा जो फोकलोर का एक मुख्य अंश है।

डा० सत्येन्द्र ने अपनी थीसिस—'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' में लोकवार्ता शब्द को ग्रहण किया है। एक स्थान पर (आलोचना पत्रिका, अंक ४, पृष्ठ ३७) फोकलोर के लिए दो अन्य शब्दों का ग्रहण करते मिलते हैं—लोकाभिव्यक्ति एवं लोकतत्व। इनमें से पहिला शब्द अव्यापक है और दूसरा 'फोक एलीमेंट' का पर्याय हो सकता है, फोकलोर का नहीं।

---

१. जनपद खण्ड १, अंक १, पृष्ठ ६६।

२. **'राजस्थानी कहावतां भाग पहिलो' सं० २००६, भूमिका पृष्ठ ११।**

आ. लोकवार्ता का क्षेत्र एवं व्यापकता

फोकलोर शब्द के हिन्दी पर्याय की खोज करते हुए इस शब्द की परिभाषा एवं इसके क्षेत्र के ऊपर भी कुछ विचार हुआ है। 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में फोकलोर के इतिहास पर टिप्पणी देते समय इसके क्षेत्र-विस्तार को भी छू लिया गया है। विश्वकोष ब्रिटेनिका के शब्द—"यह शब्द सभ्य जातियों म मिलनेवाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति रिवाजों तथा मूढ़-ग्राहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा गया था। अंग्रेजी परम्परा में फोकलोर के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नहीं की जाती··· प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इसके क्षेत्र को संकुचित अर्थ में सभ्य समाजों में मिलने वाले पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।" किन्तु शार्लट शोफिया बर्न की वैज्ञानिक परिभाषा में और भी अधिक स्पष्टता एवं सत्यता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हैंडबुक ऑव फोकलोर' में फोकलोर के इतिहास की खोज की है और एक मार्मिक मीमांसा दी है। उनके एक विशिष्ट उद्धरण का अनुवाद डा० सत्येन्द्र जी ने अपनी थीसिस 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' में इस प्रकार दिया है, "फोकलोर शब्द, शब्दार्थतः लोक की विद्या (दि लर्निङ्ग ऑव दि पीपिल) सन् १८४६ में श्री थामस ने पहिले प्रयोग में आने वाले (पापुलर एन्टीक्विटीज़) शब्द के लिए गढ़ा था। (अब) यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के संबंध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के संबंध में, भूत-प्रेतों की दुनियाँ तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढजीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्यव्यवसाय, पशु पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेंड), लोक कहानियाँ, साके (वैलेड), गीत, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में, लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लाने के समय करता है। जाल अथवा बंशी

की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके जो मछुआ समुद्र पर करता है; पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उनके बनाते समय की जाती है और उसको उपयोग में लाने वालों के विश्वास। लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।[1]

उपरोक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि लोकवार्ता शब्द का विस्तार बड़ा महान् एवं विशद है। इसके अन्तर्गत उस समस्त आचार-विचार की समृद्धि रहती है जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रतिबिम्बित होता है। यह मानव मानस की वह निधि है जिसमें परिष्कार तथा संस्कार अपेक्षित नहीं। डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने इसके क्षेत्र का परिगणन करते हुए लिखा है, "लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है, और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है[2]।"

उपरोक्त समस्त विवेचन का सार हम इस प्रकार दे सकते हैं कि लोकवार्ता पुण्य सलिला सुरसरिता के सदृश त्रिपथगा है। इसके विषयों को तीन प्रधान समूहों में बाँटा जा सकता है—१. कला २. विश्वास ३. अनुष्ठान। १. कला के क्षेत्र में, साहित्य (लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, सूक्ति तथा पहेली), चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, अभिनय कला, तथा नृत्यकला आदि हैं। २. विश्वास के क्षेत्र में वे समस्त मान्यताएँ तथा अंधविश्वास आयेंगे जो विभिन्न जीवों, धर्मगाथा के चरित्रों (यथा—इन्द्र, अग्नि आदि) भूत, चुडैलों आदि से सम्बन्धित हैं। ३. अनुष्ठान में वे कार्य-कलाप आते हैं जो इन विश्वासों के कारण विभिन्न अवसरों पर अनिष्ट का परिहार करने तथा इष्ट की सिद्धि के लिए किये जाते हैं।

विस्तृत रूप से यदि लोकवार्ता के विषयों की परिगणना की जाये तो एक लम्बी चौड़ी तालिका बन सकती है। श्रीमती बर्न ने उसके तीन उपविभाग किये हैं और उनकी विस्तृत सूची दी है। डा० सत्येन्द्र ने उसका अनुवाद एवं वर्गीकरण इस प्रकार दिया है।

---

१. डा० सत्येन्द्र—'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन', पृष्ठ ४,५।

२. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल—'पृथ्वीपुत्र' पृष्ठ ८५।

१. वे विश्वास और आचरण-अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—

१. पृथ्वी और आकाश से,
२. वनस्पति जगत से,
३. पशु जगत से,
४. मानव से,
५. मनुष्य निर्मित वस्तु से,
६. आत्मा तथा दूसरे जीवन से,
७. परामानवी व्यक्तियों से (यथा देवता, देवी तथा ऐसे ही अन्य व्यक्तियों से),
८. शकुनों-अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाशवाणियों से,
९. जादू टोनों से और,
१०. रोगों तथा स्थानों की कला से ।

२. रीति रिवाज—

१. सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ,
२. व्यक्तिगत जीवन के अधिकार,
३. व्यवसाय धन्धे तथा उद्योग,
४. तिथियाँ, व्रत, तथा त्योहार और,
५. खेलकूद (अखाड़ेबाजी) तथा मनोरंजन

३. कहानियाँ, गीत तथा कहावतें—

१. कहानियाँ (अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं ।
(आ) जो मनोरंजन के लिए होती हैं ।
२. गीत (सभी प्रकार के)
३. कहावतें तथा पहेलियाँ ।
४. पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें ।
५. साधारणतया, मोटे तौर पर लोकवार्ता के विषयों की सूचिका इस प्रकार दी जा सकती है :—

क. अभिव्यक्ति :—

१. साहित्यिक एवं कलात्मक :—लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ तथा सूक्तियाँ आदि ।
२. शारीरिक अभिव्यक्ति :—लोकनृत्य, लोकनाट्य आदि, बालक बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण खेल आदि ।

ख. रीति-रिवाज, प्राचीन परम्पराएँ, त्योहार, पर्व, पूजा, तीर्थ, व्रत आदि ।

ग. जादू टोना, टोटका, भूत प्रेत चुड़ैल सम्बन्धी विश्वास आदि ।

इस प्रकार पाठक देख पाये हैं कि लोकवार्ता का क्षेत्र बहुव्यापी है और साहित्यिक पक्ष उसका एक अंश मात्र है। परन्तु जहाँ पर विभिन्न विश्वास और नाना अनुष्ठान लोकसाहित्य सृजन में सहायक हैं वे भी लोकसाहित्य के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। इस दृष्टि से लोकसाहित्य का क्षेत्र लोकवार्ता से व्यापक हो जाता है। परन्तु इस पक्ष में विद्वान एकमत नहीं हैं।

(इ) लोकवार्ता और लोकसाहित्य का सम्बन्ध

यहाँ तक फोकलोर (लोकवार्ता) के रूप, क्षेत्र और संज्ञादि पर विचार हुआ है। अब लोकवार्ता और लोकसाहित्य के सम्बन्ध को देख लेने की आवश्यकता है। श्रीमती बर्न ने अपनी विस्तृत मीमांसा से यह स्पष्ट किया है कि लोकवार्ता का लोकसाहित्य एक अङ्ग है, और इसकी परिधि में लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ और लोकनाट्य आदि आते हैं। किन्तु डा० सत्यव्रत सिन्हा का मत इसके विरुद्ध है[1]। उनका कहना है कि लोकवार्ता स्वयं लोकसाहित्य का एक अंग है। लोकसाहित्य के दो भेद होते हैं—'लोकगीत और लोकवार्ता'। वार्ता शब्द में इतनी व्यापकता नहीं है कि उसमें समस्त लोकसाहित्य का समावेश हो जाये। इस प्रकार वे लोकवार्ता को लोकसाहित्य का एक भाग बतलाते हैं। एक स्थान पर डा० सत्येन्द्र ने भी लोकसाहित्य को लोकवार्ता से अधिक व्यापक बतलाया है। उन्होंने लिखा है—एक दृष्टि से लोकसाहित्य का केवल एक अंग ही लोकवार्ता के अन्तर्गत आ सकता है। ऐसा भी लोक-साहित्य हो सकता है, नहीं होता ही है, जो लोकवार्ता नहीं माना जा सकता। लोकवार्ता में केवल वही लोकसाहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है। इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कह सकते हैं। पर लोकसाहित्य का बहुत सा अंश ऐसा भी है जो पारिभाषिक लोकवार्ता के बाहर रहता है। यह वह साहित्य है जिसकी मौखिक परंपरा विशेष पुरानी नहीं है, जिसके निर्माता का काल अथवा समय जाना जा सकता है। जो नये विषयों पर नए उद्रेकों के परिणाम स्वरूप रचा गया है और रचा गया है बिना किसी संस्कारी

---

१ "हिन्दी अनुशीलन पत्रिका" वर्ष ४ अंक ४—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा का लेख।

चेतना के। इसके निर्माण में हृदय और मानस की वह सहज अकृत्रिम अभिव्यक्ति काम करती है जो लोकसाहित्य के लिए अपेक्षित है किन्तु किसी आदिम परंपरा की सुरक्षा नहीं है। अतः यह कहना अप्रगल्भ न होगा कि लोकवार्ता का क्षेत्र लोकसाहित्य की दृष्टि से कुछ असंकुचित है।' परन्तु संसार के सभी मनीषियों ने लोकवार्ता की व्यापकता एक स्वर से स्वीकार की है और वे सभी लोकसाहित्य को लोकवार्ता का प्रमुख अंग स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत लेखक का मत भी यही है बिना संस्काररहितता के और आदिम परंपरा की सुरक्षा के बिना किसी साहित्य को लोकसाहित्य कहना ही व्यर्थ है।

ग. लोकसाहित्य के विविध रूप

अभी तक हमने लोकवार्ता के रूप को परखा है और उसके साथ लोकसाहित्य के संबंध पर विचार किया है। अब लोकसाहित्य के विविध रूपों पर दृक्पात करना अप्रासंगिक न होगा। मोटे तौर पर हम इस साहित्य को तीन रूपों में प्राप्त करते है: एक—कथा; दूसरा—गीत; तीसरा—कहावतें आदि। लोककथाओं की विभेदता भी तीन रूपों में मानी जाती है—धर्मगाथा, लोकगाथा (अवदान साके) तथा लोक-कहानी। धर्मगाथा (माईथालाजी) पृथक् अध्ययन का विषय है। शेष कथा के दो भाग रह जाते हैं लोकगाथा तथा लोक-कहानी। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को चार रूपों में बाँटा है एक—गीत, दूसरा—लोकगाथा, तीसरा—लोक-कथा तथा चौथा—प्रकीर्ण साहित्य जिसमें अवशिष्ट समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश कर लिया गया है।

वैसे तो धर्मगाथाएँ पृथक् अध्ययन का विषय है किन्तु लोक-कहानी और धर्मगाथा में जो विशेष अन्तर आ गया है उसे समझ लेना अहितकर न होगा। धर्मगाथा अपने निर्माण-काल में एक सीधी-सादी लोक-कहानी ही होती है परन्तु उस कहानी में धर्म की एक विशेष पुट लग जाती है जो उसे लोक-कहानी के वास्तविक आधार से पृथक् कर देती है। डा० सत्येन्द्र ने इस ओर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि धर्म-गाथा स्पष्टतः तो होती है एक कहानी पर उसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो उसके सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट होता है। ये धर्म गाथाएं हैं तो लोक-साहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई वे गाथाएं धार्मिक अभिप्रायः से संबद्ध हो गयी हैं। अतः लोकसाहित्य के साधारण क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है और यह धर्मगाथा सम्बन्धी अंश एक पृथक् ही अन्वेषण

का विषय है।[1] अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि क्वीन आव दि एअर' में जान रस्किन ने धर्मगाथा की मीमांसा देते हुए लिखा है कि यह अपनी सीधी-सादी परिभाषा में एक कहानी है जिससे एक अर्थ संपृक्त है और जो प्रथम प्रकाशित अर्थ से भिन्न है।

लोकगाथाएँ (अवदान, किस्से या साके) वे काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास है अथवा जिन्हें कालक्रम से ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की वे घटनाएं जो कोरी कल्पना-जन्य हैं वह आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती हैं। जिन जातियों का मानसिक विकास नहीं हुआ है उनमें थोड़े से चमत्कारपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति युग-पुरुष अथवा ऐतिहासिक पुरुष की नाईं पूजे जाते हैं। ठीक इसी प्रकार का एक किस्सा (अवदान, गाथा) हरफूल जाट जुलाणी वाले का है जिसने अपने जीवन की बाज़ी लगा कर बधिकों से (कसाइयों से) गायें छुड़ा ली थीं। आज भी गोमाता के पुजारी प्रदेश हरियाना की साधारण जनता हरफूल जाट के वीर रसात्मक किस्सों को गा-गाकर आनन्द मनाती है। अन्य जनपदीय जातियों में भी ऐसे अनेक किस्से आपको मिल जायेंगे।

किस्सों की परख से यह स्पष्ट है कि इनमें इतिहास के अवशेषों को ही मरने से नहीं बचाया गया है पर साम्प्रतिक पुरुषों के किस्से भी चमत्कृत रूप में मिले हैं। अतः साके प्राचीन प्रवीरों और सिद्ध महात्माओं के ही हों ऐसी बात नहीं है, ये साके सामयिक पुरुष सम्बन्धी भी हो सकते हैं, बल्कि होते भी हैं। यथा—'किस्सा हरफूल जाट जुलाण का', इन नये व्यक्तियों के सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत कल्पनाएँ कर ली जाती हैं। सर आर० सी० टेम्पल ने 'लीजेंड्स आव दि पंजाब' में इन किस्सों को छः भागों में बाँटा है। इन छः चक्रों में से एक चक्र उन कथाओं का भी है जो स्थानीय वीरों से सम्बन्ध रखती हैं।

हमने लोक गाथाओं को अवदान, साका, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया है। इस साहित्यिक विद्या का एक नाम राजस्थानी में ख्यात भी प्रचलित है। ये ख्यातें रासो से भिन्न वस्तु हैं। रासो साहित्यिक वीर कथाएँ हैं और ख्यातें मौखिक कथाएँ हैं। ये लोक गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं। एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं जिन्हें वीरकथा कहा जा सकता है। इन्हें ही 'पंवारा' भी कहते हैं यथा 'जगदेव का पंवारा'। इनमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे—साके।

---

१. डा० सत्येन्द्र 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ ६ और ८।

ये उन पुरुषों के शौर्य से सम्बन्धित हैं जिनके प्रति इतिहास साक्षी है। साके में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।

लोककथा निस्संदेहात्मकतया लोकगाथा से भिन्न वस्तु है। जो विद्वान् इन दोनों को एक लोक-कहानी के ही लघु और विशाल रूप कहते हैं उन्होंने उनके मर्म को पहचानने का प्रयास नहीं किया। लोकसाहित्य के ये दोनों रूप आपस में भिन्न हैं। लोक कथाओं में कहानियों के दोनों तत्व—मनोरंजन एवं शिक्षा-पाये जाते हैं। जो कहानियाँ केवल शिक्षा के लिए ही निर्मित हुई हैं उनके लिए अलग नाम भी दिया गया है। इन कहानियों को भारतीय साहित्य में तंत्राख्यान या पशु पक्षियों की कहानियाँ कहा गया है। अंग्रेजी में ऐसी कहानियों का नाम फेबिल दिया गया है। फेबिल को समझाते हुए 'ला फाउन्टेन' ने बड़ी प्रिय परिभाषा दी है :—

"Fables in sooth are not what they appear,
Our moralists are mice and such small deer
We yawn at Sermons, but we gladly turn,
To moral tales, and so amused in yarn."

"काल्पनिक कथाएँ, वास्तव में, वैसी नहीं जैसी दिखाई देती हैं। हमारे धर्मोपदेष्टा चूहे और मृगशावक भी हो सकते हैं। हम उपदेश सुनते-सुनते ऊँघने लगते हैं; किन्तु शिक्षाप्रद कहानियों को प्रसन्नतापूर्वक पढ़ते हैं और वर्णन का खूब आनन्द लेते हैं।" भारतीय कथा साहित्य में इस प्रकार के आख्यानों की कमी नहीं है। विष्णु शर्मा का पंचतंत्र और हितोपदेश शश-शृगाल-काको लूक के मध्य चलने वाले जीवनोपयोगी आख्यान ही तो हैं। भारत के ये आख्यान संसार के श्रेष्ठतम फेबिलस् में से हैं। इनकी यही विशेषता है कि इनमें किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य मिलती है।

यहाँ पर इतना और ध्यान दे लेना चाहिए कि प्रत्येक वह कहानी जिसमें पशु-पक्षी किसी भी रूप में आये हैं तंत्रमूलक अथवा नीतिमूलक कहानी नहीं कहला सकती। फेबलस् वे ही कहानियाँ हैं जिनमें नीति बतलाई गई है अथवा कोई सुनिश्चित उपदेश दिया गया है। बौद्ध जातकों में आई हुई वे पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानी कदापि तंत्राख्यान नहीं कहलायेंगी। कारण कि वे धर्मभावना को जाग्रत करके चुप हो जाती हैं और उनका आदर धर्म-श्रद्धा से होता है। यही स्थिति वेदों में मिलने वाली उन कहानियों की है जिनमें पशु-पक्षियों का नाम आया है।

लोकसाहित्य के कथा भाग पर विचार कर चुकने पर लोक गीत और लोक कहावतें, पहेलियाँ आदि रहती हैं। लोक गीत लोक मानस के वे अजस्र

एवं निश्छल प्रवाह हैं जिनका लोक प्रतिभा के द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्माण होता है एवं गान होता है। संक्षेप में लोकगीत लोक द्वारा लोक के लिए गाया गया गीत होता है। लोक गीतों की संख्या उतनी हो सकती है जितने जीवन के पहलू हैं।

प्रकीर्ण साहित्य में उस समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश होता है जो लोककथा, लोकगाथा और लोकगीत की परिधि से बाहर पड़ जाती है। इस प्रकार इनमें लोक के वे सभी अनुभव जो समय-समय पर होते हैं आ जाते हैं। पहेलियाँ, सूक्तियाँ, बुझौवल, कहावतें, बालकों के खेलकूद के वाणी विलास आदि सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इनका विवेचनात्मक वर्णन भी यथास्थान दिया गया है।

(घ) लोकसाहित्य की विशेषताएँ

लोक साहित्य जिसके रूपादि का ऊपर वर्णन हुआ है उसकी विशेषताओं पर दृक्पात करना असमीचीन न होगा। लोक साहित्य को कुछ विद्वानों ने लोक श्रुति (वेद) कहा है। वेद का नाम श्रुति इसी विशेषता के कारण पड़ा है कि यह शिष्य परंपरया श्रुतिबल से चलता चला आया है। लोक-साहित्य भी इसी कर्ण परम्परा से आगे बढ़ता है। वह दादी से पोती तक, नानी से धेवती तक श्रुति मार्ग से आया है। यही इसकी प्रथम एवं प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसके विपरीत प्रणीत साहित्य मौखिक परम्परा की अपेक्षा लेखनी परंपरा पर गर्व करता है। यदि लेखबद्धता का वह गौरव लोक-साहित्य को मिल जाये तो वह एक प्रकार से निष्प्राण हो जायेगा। लिपि का प्रसाद भले ही गीतों, गाथाओं, कथा-कहानियों को सुरक्षित रख ले परन्तु उनकी अनुप्राणिकाशक्ति उसी क्षण नष्ट हो जाती है जब कि वे लेखनी की नोक पर सवार होकर कागज की भूमि पर उतरना आरंभ करते हैं। उनको सुरक्षा, सौन्दर्य एवं सम्मान भले ही मिल जाये किन्तु उनमें वह स्वाभाविक उन्मुक्त प्रवृत्ति नहीं रहती जिसमें वे जन्मे हैं, पनपे हैं और पुष्ट हुए हैं। वह गमले के पौदे की भाँति हरा-भरा रहता हुआ भी अशक्त और भविष्यत् की उन्नति से विमुख रहता है। फ्रैंक सिजविक के ये शब्द कितने तथ्यपूर्ण हैं कि लोकसाहित्य का लिपिबद्ध होना ही उसकी मृत्यु है। वस्तुतः लोकसाहित्य की मौखिकता ने ही उसे व्यापकता एव अनेकरूपता प्रदान की है।

इसी बात को प्रो० किटरेज ने 'इंगलिश और स्काटिश बैलेड्स' की भूमिका में इस प्रकार कहा है—'लोक-साहित्य का शिक्षा से कोई उपकार

नहीं होता'.........जब कोई जाति पढ़ना सीख लेती है, तो सबसे पहिले वह अपनी परंपरागत गाथाओं का तिरस्कार करना सीखती है। परिणाम यह होता है कि जो एक समय सामूहिक जनता की संपत्ति थी वह अब केवल अशिक्षितों की पैतृक संपत्ति मात्र रह जाती है।'

एक दूसरी विशेषता, जो लोकसाहित्य के पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है, वह हैं उसकी अनलंकृत शैली। शिष्ट साहित्य में सालंकारता के प्रति विशेष आग्रह होता है। यत्र-तत्र अनलंकृति भी क्षम्य है—'अनलंकृतिः पुनः क्वापि' (मम्मट—काव्य प्रकाश, काव्य का लक्षण) पर लोक-साहित्य में बनावट, सजावट, कृत्रिमता और अलंकरणप्रियता का आग्रह नहीं है। यह तो उस वन्य कुसुम के सदृश है जो बिना संवारे हुए भी अपनी प्राकृतिक आभा से दीप्तिवान है। इसमें नैसर्गिक रूक्षता (खुरदरापन) है किन्तु है एक लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुक्त। यह तो लोक मानस की वे सहज तरंगें हैं जो सहृदयों के कलहंस को आह्लादित करती हैं। यह तो जाह्नवी की उस अजस्र जलधारा के सदृश है जो मानव के साथ अनादि काल से बहती चली आ रही है। सालंकार काव्य से लोक-गीतों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करते हुए पं० रामनरेश त्रिपाठी के ये शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे—'ग्राम-गीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्राम-गीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।' कितने सार्थक हैं त्रिपाठी जी के ये शब्द। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इनमें दंडी का पद लालित्य, भारवि का अर्थ-गौरव और कालिदास की अनूठी उपमाएँ न देखने को मिलें—बेशक, पर इनमें रस का एक पारावार लहरा रहा है जो सहृदय संवेद्य है।

सादगी लोक कविता का सर्वस्व है। साहित्यिक कविता में ऊहा और कल्पना के वे रंग हैं जो कालान्तर में छूछे हो जाते हैं। लोक कविता अपने नैसर्गिक रंग में मानव के उषःकाल से जीवित है और जीवित रहेगी। इस काव्य क्षेत्र में अलंकार बहिष्कार की शपथ नहीं ली गई है। ये तत्व अस्पृश्य एवं त्याज्य नहीं ठहराये गये हैं। अतः रीत्यलंकार पारखी अनावश्यक रूप से निराश व चिंतित न हों। उन्हें स्थान-स्थान पर बड़े भव्य एवं सुन्दर अलंकार चारों ओर बिखरे मिलेंगे। हमारा कहने का अभिप्रायः केवल यह है कि लोकसाहित्य में शिष्ट साहित्य की भाँति रीत्यलंकारों के प्रति आग्रह नहीं होता। जहाँ अलंकार आये हैं अनायास ही आ गये हैं। उनको संख्या अल्प

अवश्य है किन्तु आये हैं ये संयम के साथ। इन्हीं तथा अन्यान्य कारणों से लोक साहित्य को सर्वप्रियता प्राप्त हुई है। अनुपम सादगी और स्वाभाविक सरलता लोक साहित्य के आत्मीय गुण हैं।

लोक साहित्य की तीसरी प्रमुख विशेषता है रचयिता और रचना काल का अज्ञात होना। दादी नानी से चली आती हुई दंतकथाओं और गीतों आदि की परंपरा किस युग से चली और किस कृती के पुण्यों का परिणाम है इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं। यों तो सभी रचनाएँ किसी न किसी व्यक्ति की प्रतिभा का प्रसाद है किन्तु उसका व्यक्तित्व इस परंपरा में अज्ञातावस्था में है। वास्तव में, इन गीतादिकों के कर्त्ता वे निरीह जन हैं जिन्होंने अपने नाम और गाम की चिंता न करते हुए समाज के लिए अपनी प्रतिभा की भेंट दी है। कालक्रम से अज्ञातनामा व्यक्ति विशेष की रचना में समुदाय ने भी अपना योग दिया और यह स्वाभाविक भी था क्योंकि वह वस्तु समुदाय की है और समुदाय के लिए है। समुदाय का योग मिलना आवश्यक है। इसी से कविता के आरंभ पर विचार करते हुए कुछ विद्वानों ने कहा है कि आदि में कविता समस्त समुदाय के प्रयत्नों से बनी। किसी ने कुछ जोड़ा, किसी ने कुछ और एक पद बना। इसी प्रक्रिया से कविता आगे बढ़ी है। इससे एक कठिनाई अवश्य हुई है कि लोकसाहित्य का कोई मूल पाठ नहीं मिलता। यह भी कहा जा सकता है कि संभवतः कोई निश्चित मूल पाठ रहा भी न हो। इसका एक विपरीत परिणाम यह भी हुआ है कि कई लोगों को घाघ, भड्डुरी आदि की कहावतों को लोकसाहित्य कहने में आपत्ति हुई है। किन्तु इन लोक कलाकारों का व्यक्तित्व इतना व्यापक और महान् हो चुका था कि इनके नाम भी एक समुदायवाची बन गये हैं। इन्होंने 'स्कूल का रूप' ले लिया है। सच पूछा जाये तो इन नामों में नाम की गंध न रह गई है। ये तो आप्त पुरुष के रूप में शेष हैं। भले ही वह पुरुष घाघ हो, भड्डुरी हो, या हो अन्य कोई लोक-नाट्यकार दीपचंद जैसा व्यक्ति। लखमी हरियाने का लोक सांगी इस रूप में है कि उसमें लोक नाट्यकार के लिए जिस सूझ, व्यक्तित्व और प्रतिभा की आवश्यकता होती है वे सब एक-एक करके विद्यमान हैं। उसकी कल्पना इतनी निराली और व्यापक तत्वों से समन्वित थी कि दर्शकवृन्द 'वाह दादा, वाह दादा' कहकर पुकार उठते और रसानुभूति से उन्मत हो जाते थे। यहाँ पर डा० उपाध्याय की वह स्थापना जिससे उन्होंने राहुल जी आदि अनेक भोजपुरी भाषा में लिखनेवालों को भोजपुरी लोकसाहित्य निर्माताओं में स्थान दिया है कुछ खटकने वाली है। राहुल जी का रूप तो एक उत्कृष्ट विवेचक और मीमांसक का है उसमें भला जन गायक का रूप कहाँ आ सकता

है ? फिर लोक बोली या लोक भाषा में लिखी हुई प्रत्येक वस्तु लोक साहित्य के पावन सिंहासन पर नहीं विराजमान हो सकती। इसके लिए उन परिस्थितियों की आवश्यकता है जो किसी वस्तु को लोकसाहित्य बनाने में सहायक होती हैं।

लोकसाहित्य की अन्य विशेषता यह है कि यह प्रचार या उपदेशात्मक प्रवृत्तियों से अछूता है। विशुद्ध लोकसाहित्य में प्रचार, प्रोपैगेन्डा अथवा उपदेश का अभाव रहता है। उसमें तो विरह, वीरता, करुणादि के सात्विक भाव भरे होते हैं जो जन-जन को एक रूप से प्रिय एवं ग्राह्य हैं। यहाँ पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि लोकोक्तियों में भी तो उपदेशात्मक प्रवृत्ति है फिर वे लोकसाहित्य का प्रमुख अंग क्योंकर हैं ? विचारने पर प्रतीत होगा कि लोकोक्ति-साहित्य का प्राण वह कोरा उपदेश ही नहीं है। लोकोक्ति तो वह विट् एवं चत्मकार है जो शत-शत अनुभवों के द्वारा प्राप्त हुआ है और किसी के मुख से चमत्कृत रूप में प्रसूत हुआ है। इसलिए लोकोक्ति केवल 'अभिव्यक्ति' पर जीवित है उपदेश पर नहीं। उपदेश तो वहाँ एक गौण तत्त्व है।

लोकसाहित्य की एक और विशेषता यह भी है कि उसमें साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है। वह पक्षी व पवन के सदृश स्वच्छन्द है। उसे शाक्त एवं वैष्णव की आलोचना से कुछ नहीं लेना देना है। उसे विष्णु भी उतने ही पूज्य हैं जितनी कि शक्ति या काली आराध्या। उसकी निर्गुण ब्रह्म में उतनी ही आस्था है जितनी कि सीताराम, राधाकृष्ण और शिव-पार्वती में। लोकसाहित्य की इस उदात्त-भावना ने निस्संदेह इसे अन्य सभी साहित्यों से महान् बना दिया है।

अंत में इस बात को समाप्त करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं यदि कविता का कार्य पाठक को संवेदनशील बनाना, सोचने समझने की शक्ति देना और जीवन की रसमय व्याख्या करना है तो निश्चय ही शास्त्रीय कविताएँ अधिकांश में असफल रही हैं। लोकगीत चाहे जिस देश व जाति के हों कविता के वास्तविक उत्तरदायित्व को बहुत अंश में पूरा करते हैं, निभाते हैं।

(ङ) लोकसाहित्य का महत्व

उपरोक्त विवेचन से हम उस कोने पर पहुँच गये हैं जहाँ से सरलतया लोकसाहित्य के महत्व को आंका जा सकता है। लोकसाहित्य का महत्व बहुविध है। विचार करने पर पाठक को धर्मगाथा (माइथालाजी), नृविज्ञान

(एनथ्रापोलोजी), जाति विज्ञान (एथनोलोजी) और भाषा विज्ञान (फाइ-लालोजी) आदि क्षेत्रों में लोकसाहित्य की महत्ता, विशेष रूप से अनुभव होगी। यदि हम कहें कि लोकसाहित्य के सम्यक् विवेचन के बिना इन क्षेत्रों का अध्ययन अपूर्ण एवं अर्द्धपूर्ण होगा तो कोई अत्युक्ति न होगी। लोक-साहित्य धर्मगाथादिकों के अध्ययन के लिए आधारशिला का कार्य करता है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में तो लोक साहित्य की महत्ता सर्वविदित है।

विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गये हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोकसाहित्य ही दिशा निर्देश करता है। लोकसाहित्य का गंभीर अध्ययन जीवन और जगत की मौलिक एवं प्रामाणिक खोज के लिए अत्यन्त आवश्यकीय है। आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रामाणिक एवं रोचक साधन लोकसाहित्य ही तो है। इस स्थल पर एक और बात भी विचारणीय है कि सभ्य कही जाने वाली जातियों के वास्तविकतावादी (Realistic) लेखकों की भाँति अनेक असंस्कृत जातियों के मौखिक साहित्य में भोग व लिप्सा की दुर्गन्ध नहीं है। इनके गीतों में जीवन की निकृष्ट दशा को छोड़ जीवन के रमणीय पक्ष का प्रदर्शन हुआ है।

भय, आश्चर्य और जिज्ञासा हेतु मानव ने छन्दोबद्ध अथवा छन्दोमुक्त जो कुछ भी कहा है वह सभी हमारे अन्वेषण, अध्ययन एवं मनन के लिए उपादेय है। उसमें वे सभी प्रकार के गीत, कथा, गाथा, पहेली, लोकोक्ति, मुकरी आदि आयेंगे जिनके द्वारा मानव ने अपने हृदय के मोतियों को बखेरा है, अपनी ज्ञान-गंगा प्रवाहित की है। शिशु स्वागत के लिए गाये गये होलड़ और लोरियाँ भी इसी साहित्य के अङ्ग हैं। उन सबका अध्ययन बड़ा मनोरम एवं उपयोगी है जो नीचे के विवरण से स्पष्ट है।

१. ऐतिहासिक महत्व

किसी देश व समाज के प्राचीन रूप को झांक देख लेने का अनुपम साधन लोकसाहित्य है। जब श्रावण मास में चंदन के रूख पर रेशम की डोर से झूला डालने की मांग हरियाणे की नवोढा करती है, बटेऊ (अतिथि, विशेषकर जामाता) के पधारने पर सोने की कढ़ाई में पूरियाँ उतारने की बात कही जाती है तो बरबश मन समाज के विगत वैभव विलास की ओर खिंच जाता है। भले ही ये समाज की आदर्श कल्पनाएँ रही हों किन्तु जन मानस

में ये वस्तुएँ रही अवश्य हैं। चन्द्रावल तथा अन्यान्य पतिपरायणा महिलाओं के आदर्श पातिव्रत को प्रदर्शित करने वाले गीत तथा कामांध यवनों के निरीह जनता के गार्हस्थ्य जीवन को पंकिल करने वाले कारनामे किस इतिवृत्त से अधिक प्रभावशाली नहीं हैं ?

वर्णनात्मक दोहे जो ग्रामीण जनता के मुख में आसीन हैं बड़ी पते की बातें बतलाते हैं और पिछले इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। हरियाणा के विषय में गुरु गोरख नाथ के पर्यटन से सम्बन्धित यह दोहा—

'कंटक देश, कठोर नर, भैंस मूत्र को नीर।'
करमां का मारा फिरे, बांगर बीच फकीर।

नाथ कालीन इस प्रदेश के इतिहास को अपने में समेटे हुए है। यह संस्कृत में प्राप्त उस वर्णन के प्रतिकूल है जहाँ हरियाणे को 'बहुधान्यकभूः' कहा गया है। इस स्थिति में पाठक एक विचिकित्सा में पड़ जाता है कि राजाश्रित किसी कवि की वह संस्कृतोक्ति सत्य है अथवा रमते राम बाबा गोरखनाथ की यह ठेठवाणी। सामयिक परिस्थिति एवं वातावरण को देखते हुए गोरख बाबा वाली बात ही यथार्थ बैठती है। ऐसे ही अन्य अनेक तत्व इतिहास की खोज में सहायक होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलाई है कि इसमें इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है परन्तु उनका यह आक्षेप शिष्ट और लोकसाहित्य दोनों पर लागू नहीं होता। लोक मस्तिष्क ने अपने इतिहास की कड़ियाँ अपने गीतों में, अपनी कथाओं में जोड़ी हैं। लोक-गाथाएँ तो एक रूप से इतिहास की प्रचुर सामग्री से सम्पन्न हैं। उनमें अतिरंजना भले ही हो किन्तु इतिहास के विद्यार्थी को कुछ ऐसे तथ्य अवश्य मिल जायेंगे जो प्रसिद्ध इतिहास लेखकों की दृष्टि से छूट गये हैं।

२. सामाजिक महत्व

लोकसाहित्य का सामाजिक मूल्य बहुत अधिक है। समाज-शास्त्र के समुचित अध्ययन के लिए लोकसाहित्य की महत्ता सुविदित है। भारतीय समाज का ढांचा किस प्रकार का रहा है यह लोक-गीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों से भली-भाँति समझ में आ जाता है। सास बहू का कटु संबंध, ननद भौजाई का वैमनस्य, विप्रयुक्ता तथा विधवा की दशा का मार्मिक एवं याथातथ्यपूर्ण वर्णन किसी लिखित रूप में उतना मार्मिक नहीं मिलेगा। भाई बहन के निरीह निश्छल कोमल प्रेम के उदाहरण क्या कल्हण की राजतरंगिणी,

अष्टादश पुराण और टॉड राजस्थान आदि महान ग्रंथों में देखने को मिलेंगे ? शिशु जन्म पर होने वाले सामाजिक कृत्यों के प्रति क्या इतिहास-लेखकों का ध्यान कभी गया है ? इन सबके समीचीन अध्ययन के लिए लोक साहित्य ही तो एक मात्र साधन है ।

३. शिक्षा विषयक महत्व

ज्ञान एवं नीति की दृष्टि से यह साहित्य पर्याप्त समृद्ध है । ग्रामों में चाहे स्कूल, कालेज एवं उच्च शिक्षा का समुचित प्रबंध न हो, चाहे ग्रामीण जनता को अक्षर ज्ञान की कोई सुविधा न हो परन्तु जनता के ज्ञान में बराबर वृद्धि होती रहती है । इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आँखों द्वारा न लेकर कानों द्वारा ग्रहण करती है । इस प्रकार यह शिक्षा दिन और रात का; प्रातः और मध्याह्न का, तथा संध्या व प्रदोषकाल का कोई ध्यान न कर सहज रूप में वायु और आकाश के पंखों पर चढ़ नारद की भाँति जन-जन के द्वार पर अलख जगाती है । ग्राहक को इस शिक्षा के हृदयंगम करने के लिए किसी विशेष वातावरण एवं परिस्थिति की आवश्यकता नहीं पड़ती । यह कहना अनुचित न होगा कि ग्रामों में मौखिक विश्व विद्यालय खुले हुए हैं । परस (चौपाल) और पूअर (अलाव) इस ज्ञान-वितरण के लिए बड़े उपयुक्त स्थल हैं । इन संस्थाओं में शिक्षा के अलग-अलग स्तर हैं जहाँ आबालवृद्ध को आयु के अनुसार शिक्षा मिलती है । शिक्षार्थी को समयानुसार सब चीजें सीखने को मिलेंगी । कोर्स (पाठ्यक्रम) आयु के अनुसार चलता है । बचपन में बाल सुलभ और बुढ़ापे में वृद्ध सुलभ ।

इस शिक्षा वितरण के सर्वोत्तम साधन लोक-कथाएं हैं । यों तो बालक की शिक्षा जननी की गोद में ही आरम्भ होती है । वहीं से वह चंदामामा, भूजू के म्याऊं के, आटे बाटे के द्वारा कुछ सीखता चलता है । कैसा सुन्दर ढङ्ग है, शिक्षा की शिक्षा और मनोविनोद का मनोविनोद । घर-घर में किंडर गार्टन और मांटेसरी शालाएँ लगी होती हैं । माता-पिता, भाई-बहन, दादी-दादा, अड़ोसी-पड़ोसी अबोध बालक की ज्ञान झोली में कोई न कोई रत्न बिना माँगे डालते रहते हैं । बालक कुछ बड़ा होता है तो दादी-नानी की घरेलू कहानियाँ बालक को हुंकारे के साथ कभी आश्चर्य, कभी उत्साह और कभी उदारता के पाठ पढ़ाती चलती हैं । इन कहानियों में बालक के लिए परिचित कुत्ता, बिल्ली, कौआ, मोर, तोता, सारस, गीदड़ और लोमड़ी आदि पात्र जीवन की व्याख्या बालक की मातृभाषा में करते चलते हैं । ये कहानियाँ श्रोता को सामाजिक व्यवहार का ज्ञान भी

देती रहती हैं। इन ग्रामीण घरेलू कहानियों में और पाठ्य-पुस्तकों में स्थान पाने वाली आधुनिक कहानियों में एक मौलिक अन्तर है। स्कूली कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति लहरें लेती है जब कि घरेलू कहानियों का पट उन्हीं तन्तुओं से निर्मित है जो पूर्णतया भारतीय हैं। वही—'एक राजा था। उसके सात छोरे थे और सात छोरियाँ थीं'—आदि पूर्व परिचित बातें हैं।

बालिकाओं के दृष्टिकोण से देखें तो लोकसाहित्य बड़ा उपयोगी मिलेगा। उनके लिए सामाजिक एवं कौटुम्बिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध यहाँ मिलता है। उदार जननी एवं सद्गृहस्थ बनना भारतीय पुत्रियों का प्रथम व पुरातन उद्देश्य रहा है। बलिकाएँ जीवन के आरम्भ से ही गुड़ियों के साथ खेल-खेलकर अपना मनोरंजन करती हैं और गृहस्थ के अनेक रहस्यों को अनायास सीख लेती हैं, समझ लेती हैं। कुछ सयानी होती हैं तो गीतों की दुनिया में पदार्पण करती हैं। यह संसार उन्हें पर्याप्त मात्रा में शिक्षित कर देता है। यहीं से उन्हें ऐसे असंख्य नुसखे (योग) मिलते हैं। जो भावी जीवन के लिए लाभप्रद एवं हितकर सिद्ध होते हैं। जिन बातों को ये गुड्डे गुड़िया के रूप में कहती सुनती है उन्हीं से अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित करती चलती हैं। डा० वैरियर एलविन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फोक्सांग्स् आव मैकलहिल्स्' में एक स्थान पर लोक गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि—'इनका महत्व इसीलिए नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय में जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमें मानवशास्त्र (सोशियोलाजी) के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है'। डा० एलविन के मत में एक सार है, एक तथ्य है।

४. आचारिक महत्व

लोक में आचार का बड़ा महत्व है। लोकसाहित्य में आचार सम्बन्धी बातें यत्र-तत्र बिखरी मिलेंगी। यहाँ आचार सम्बन्धी कितने ही अध्याय खुले पड़े हैं जिनमें एक लोकोत्तर नैतिक एवं आचारिक अवस्था का वर्णन है। सतीत्व का कितना ऊँचा आदर्श यहाँ उपलब्ध होता है यह चन्द्रावल के कथा-गीत से स्पष्ट है। लोक साहित्य में जिन उच्चादर्शों का वर्णन है जिन लोकोत्तर चरित्रों की कल्पना है उनमें राम कृष्ण शिव और सीता राधा पार्वती को नहीं भुला सकते। वे हमारे आचार के केन्द्र हैं। इन्हीं आदर्शों को अपनाकर भारत भारत रह सकता है।

५. भाषा वैज्ञानिक महत्व

यह सत्य बात है कि 'भाषा-शास्त्री' के लिए शिष्ट साहित्यिक भाषाएँ

उतनी उपयोगी नहीं है जितनी कि बोलचाल की भाषाएँ। इसलिए लोक-साहित्य लोक-भाषा की वस्तु होने के कारण भाषा-वैज्ञानिकों के लिए बड़ा महत्व पूर्ण है। यही वह धरातल है जहाँ पर भाषातत्ववेत्ता भाषा के परतों को उघाड़कर देखते हैं और गंभीर से गंभीर स्तरों में प्रवेश पाते हैं।

अर्थ परिवर्तन को समझने के लिए तथा शब्दों के इतिहास की खोज के लिए लोकसाहित्य सर्वाधिक उपादेय है। पं० रामनरेश जी त्रिपाठी का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि 'आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता गाँव वाले हैं और उनका साहित्य इस भाषा को घढ़ने के लिए टकसाल का काम दे रहा है। संस्कृत के शब्द किस प्रकार साधारण जन के लिए उपयोग सुलभ हुए हैं यह सब इस टकसाल का ही परिणाम है।' जब एक साधारण ग्रामीण किसी नई वस्तु या किसी नूतन प्राकृतिक व्यापार को देखता है तो उसे अपनी समझ से कोई न कोई नाम देना चाहता है। इसके लिए किसी पंडित व पुरोहित की अपेक्षा उसे नहीं होती। उसने साईकिल देखी। कभी नहीं सोचा कि यह अंग्रेजी अथवा ऐंग्लो-सेक्सन भाषा का शब्द है और उसके क्या माने हैं। उसने देखा केवल एक नूतन व्यापार कि एक गाड़ी है और वह पैर से चलती है। अतः वह सहसा कह बैठा 'पैरगाड़ी'। यह एक साधारण शब्द है लेकिन कितना सार्थक एवं उपयोगी है। संभवतः संस्कृत का धुरंधर वैयाकरण इतना सार्थक शब्द निर्माण न कर सकता। यदि करता तो उस शब्द की दशा 'मघवामूल विडौजा टीका' होती अर्थात् नवनिर्मित शब्द मूलशब्द से भी दुरूह होता।

लोकमानस की शब्द निर्माण शक्ति की परख प्रायः क्रिया-विशेषण बनाने में सरलतया हो जाती है। जोर से गिरने के लिए 'धड़ाम से गिरा' अधिक सार्थक एवं स्वतः बोधक है आदि। यदि हम किसी ग्रामीणजन को बोलता सुने तो हमें सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि वह कितने ही ऐसे शब्द प्रयोग में लाता है जो भारतीय वातावरण में पनपे हैं यथा पौन (पवन) पौरख (पौरुष) वार (वारि) आदि ऐसे शब्द हैं जिनके अन्तस् में भारतीय वातावरण हिलोरें ले रहा है। एक सरल विवेचन से हम यह देख पायेंगे कि लोकभाषा शिष्ट भाषा से अधिक सम्पन्न और बलवती है। इसके अध्ययन से हमारी भाषा समृद्ध बनेगी और सरल भी बनेगी। हरियाना लोकसाहित्य का अध्ययन भी हिन्दी शब्दकोश की पर्याप्त अभिवृद्धि करेगा। इस बोली के उणियार (सदृश), ल्हास (Co-operative league) तथा दावें (पर्याप्त रूप से) आदि ऐसे शब्द हैं जो हिन्दी की भाव-प्रकाशिका को बढ़ायेंगे।

६. सांस्कृतिक महत्व

लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष बड़ा विशद है। विश्व की संस्कृतियाँ

कैसे उद्भूत हुईं, कैसे पनपीं, इस रहस्य की कहानी अथवा इतिहास हमें लोक साहित्य के सम्यक् अध्ययन से मिलता है। संस्कृतियों के पुनीत इतिहास की परख अनेकांश में लोकसाहित्य से संभव है। सच पूछा जाये तो लोकसाहित्य ही संस्कृति की अमूल्य निधि है। महात्मा गांधी के निम्नलिखित शब्द जिनमें लोकसाहित्य के सांस्कृतिक पक्ष की महत्ता प्रकट की गयी है, चिरस्मरणीय रहेंगे—'हाँ, लोकगीतों की प्रशंसा अवश्य करूँगा, क्योंकि मैं मानता हूँ कि लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार होते हैं।' गुजराती मनीषी काका कालेलकर ने लोकसाहित्य के सांस्कृतिक पक्ष को इन शब्दों में व्यक्त किया है—'लोकसाहित्य के अध्ययन से, उसके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में फिरने-डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। स्वाभाविकता से ही आत्मशुद्धि संभव है[१]।' अंत में यदि हम यह कहें कि लोक साहित्य जन-संस्कृति का दर्पण है तो अत्युक्ति न होगी।

संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है। इसके मूलतत्वों के संबंध में जो तत्व सबसे महत्वपूर्ण एवं विचारणीय हैं, वह है विगत का प्रभाव। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है। झूला-झूलते, चाकी पीसते, यात्रा करते हमारे आदर्श राम-लक्ष्मण के पुण्य चरित्र ही हैं। यही लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष है।

———

१. 'राजस्थानी लोकसाहित्य'—पारीक पृष्ठ १६।

प्रथम अध्याय

अ. हरियाना प्रदेश का इतिहास और क्षेत्र-विस्तार

आ. हरियाना लोकसाहित्य के विविध रूप

अ. हरियाना प्रदेश का इतिहास और क्षेत्र-विस्तार

१. हरियाना प्रदेश का इतिहास, नामकरण व प्राचीनता

विषय-प्रवेश में हमने लोकवार्ता और लोकसाहित्य के रहस्य, पारस्परिक सम्बन्ध तथा लोकसाहित्य की विशेषताओं को जानने का प्रयत्न किया है। "हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य का अध्ययन" नामक विषय पर पहुँचने से पहिले हरियाना प्रदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करना अनुपयुक्त एवं अप्रासंगिक न होगा। अतः इस अध्याय के प्रथम अर्द्धभाग में हरियाना प्रदेश की प्राचीनता, उसका क्षेत्र-विस्तार एवं सीमाओं पर विचार करेंगे और उत्तरार्द्ध में हरियाना प्रदेश से प्राप्त लोकसाहित्य के विविध रूपों का वर्णन करेंगे।

हरियाना प्रांत का इतिहास एक रूप से उपेक्षित रहा है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक का इतिहास इस प्रदेश के विषय में मूक बना हुआ है। शक, मालव आदि तक्षशिला को केन्द्र बनाकर विकसित हुए। उनके समय में मथुरा नगर ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था किन्तु तक्षशिला और मथुरा के मध्यवर्ती इस प्रदेश को कोई ऐतिहासिक महत्ता नहीं मिली। खेद की बात है कि जिस महान् प्रदेश को आज हरियाना के नाम से पुकारा जाता है उस प्रदेश का प्राचीन ग्रंथों में इस नाम से कही वर्णन तक नहीं मिलता। ऋक् संहिता ६.२.२५.२ में 'रजतं हरयाणे' पाठ में एक शब्द मिलता अवश्य है किन्तु यह शब्द देशवाची नहीं है।[1] यह शब्द वहाँ पर एक राजा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है "सदैव यान (रथ) चलता रहता है जिसका।" परन्तु इस प्रदेश की स्थिति से यह सहज ही ज्ञात हो

१. निरुक्त—नैगम कांड, अध्याय ५, खंड १९, पृष्ठ ५२६ (दुर्गाचार्य की टीका)।

मूलपाठ—हरयाणो हरमाणयानः। रजतं हरयाण इत्यपि निगमो भवति। भाष्य—हरयाण इत्यनवगतम्। हरमाणयान इत्यवगमः।
ऋजमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे। रथं युक्तमसनाम सुषामणि—ऋक् संहिता ६.२.२५.२

अर्थ—इसमें यान की स्तुति की गई है। घोड़ों से युक्त, चांदी से मढ़े और सरल, सुखद गतिवाले रथ को हमने, यान सदैव चलता रहता है जिसका और साम शोभायमान है जिसका ऐसे उक्षण्यायन नाम के राजा के यजमान और महादक्ष दाता होने पर, प्राप्त किया।

जाता है कि यह प्रदेश विगत युगों में आर्य सभ्यता का केन्द्र रहा है। इस प्रदेश की परिसीमा मनुस्मृति और महाभाष्य में वर्णित ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि, मध्य-देश तथा आर्यावर्त के प्रचुर भूभाग को अपने में समेटे हुए है।[१] चाहे जो कुछ हो इतना तो स्पष्ट है कि मनुस्मृति, महाभाष्य, बौधायन धर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र और विनयपिटक आदि में वर्णित मध्य-देश तथा आर्यावर्त की पश्चिमी सीमा आधुनिक हरियाने की पश्चिमी सीमा रही है।[२] आज भी हरियाने की पश्चिमी सीमा पर सरस्वती तथा दृषद्वती (घग्गर) नदी बहती है।[३]

उपरोक्त वर्णन से पाठकों को यह विदित हो गया है कि यह प्रांत एक प्राचीन प्रदेश एवं कई प्राचीन जनपदों की लीलाभूमि रहा है। महाभारत में जनपदों का वर्णन मिलता है। उन जनपदों में कुरुवन एक विशेष ख्याति-प्राप्त प्रदेश था। आधुनिक हरियाना कुरुवन प्रदेश का वह भूभाग है जो कौरवों ने पांडवों को दिया था। इसी प्रदेश में पांडवों ने अपनी इतिहास प्रसिद्ध राजधानी इन्द्रप्रस्थ बसाई थी। हरियाना प्रदेश में ही पाणिप्रस्थ (आधुनिक पानीपत) श्रोणिप्रस्थ (आधुनिक सोनीपत) वे ऐतिहासिक स्थान हैं जिनकी मांग पांडवों

---

१. (i) सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ मनुस्मृति २.१७
सरस्वती और दृषद्वती देवनदियों के बीच के देवताओं से बनाये गये देश को ब्रह्मावर्त नाम से कहा जाता है।

(ii) कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एषः ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादन्तरः ॥ २.१६
कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन देश ब्रह्मर्षि देश कहलाते हैं जो ब्रह्मावर्त से भिन्न हैं।

(iii) हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २.२१
हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में विनशन नदी से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम देश को मध्यदेश कहा जाता है।

महाभाष्य—कः पुनरार्यावर्त्तः ? फिर आर्यावर्त्त कौन सा देश है ?
प्रागदर्शनात् प्रत्यक् कालकवनाद् दक्षिणेन हिमवंतं उत्तरेण पारियात्रम्।
अदर्शन नदी से पूर्व में, कालक वन कनखल से पश्चिम में, हिमालय से दक्षिण और पारियात्र से उत्तर में आर्यावर्त देश है।—
विधिशेषप्रकरणे एकवद्भावप्रकरणम् ६, पृष्ठ ४३७

२. इंडियन एन्टीक्वेरी १६०४, पृष्ठ १७६ पर कविराज शेखर पर नोट।

३. गज़ेटियर जिला हिसार—पृष्ठ ५, पर हिसार की नदियाँ।

ने पारस्परिक कलह की उपशांति के लिए की थी। इनके आसपास ही दो अन्य छोटे-छोटे ग्राम हैं, पांचवां ग्राम इन्द्रप्रस्थ था।

इन्द्रप्रस्थ से पांडवों ने पश्चिम दिग्विजय प्रारंभ की थी। यह प्रदेश एक समय बड़ा समृद्ध था। यहां के कई नगर प्राचीन युग में राजधानी रहे हैं। प्रारम्भ में यौधेयों ने रोहतक को अपनी राजधानी बनाया था जो प्राप्त सिक्कों से विदित है। उस समय इस प्रदेश का नाम 'बहुधान्यक' प्रसिद्ध था। होशियारपुर, भरतपुर और सहारनपुर से प्राप्त सिक्कों से भी यह प्रकट है कि यह प्रदेश बड़ा समृद्ध एवं सम्पन्न रहा होगा। पीछे से इस प्रदेश पर वर्धनवंश का राज्य रहा और हर्षवर्धन ने स्थानेश्वर (थानेसर) को अपनी राजधानी बनाया। अतः उपरोक्त विवरण से यह अवगत हो जाता है कि यह भूभाग चिरकाल तक भारतीय इतिहास में बड़ा प्रमुख रहा है। इस प्रदेश के ऐतिहासिक मूल्य को जानकर भी हम उस युग तक नहीं पहुंच पाये हैं जिस युग में इसे 'हरियाना' नाम से पुकारा गया। इस नाम का सर्वप्रथम उल्लेख विक्रम की चौदहवीं शताब्दि के अंतिम भाग के (१३८४) एक शिलालेख में मिला है। इसमें हरियाना देश को पृथ्वी पर 'स्वर्ग सन्निभ' कहा गया है और यहां की 'ढिल्लिका' दिल्ली नाम्नी पुरी तोमरवंश द्वारा निर्मित बताई गई है।[१] एक दूसरे स्थान पर 'हरियानक' शब्द प्रयुक्त हुआ है। बलबन के राजत्वकाल के एक शिलालेख में यह शब्द आया है। यह शिलालेख उपरोक्त शिलालेख

१. यह शिलालेख सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का है, जो दिल्ली से ५ मील दूर दक्षिण स्थित 'सारबन' नाम के गाँव से मिला है और इस समय दिल्ली के म्यूज़ियम बी० ६ में रखा हुआ है। इस शिलालेख में तिथि सं० १३८४। ८९ विक्रमीय फाल्गुन शुक्ल ५ मंगलवार अंकित है। कुल १९ श्लोक हैं। यहाँ पर उद्धृत अंश तृतीय श्लोक है :—

देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता।
तोमरानन्तरं तस्यां राज्यं हितकंटकम्।
चाहमाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालनतत्पराः॥

अ. 'डाउन फाल आफ हिन्दु इंडिया'—सी० वी० वैद्य, तृतीयभाग, पृष्ठ २१६।
आ. 'कैम्ब्रज हिस्ट्री आफ इंडिया' तृतीय भाग, पृष्ठ ५०७,५१७।
इ. 'अग्रवाल जाति का इतिहास' पृष्ठ २१. २२
ई. 'एपीग्राफिका इंडिका' भाग १३ पृष्ठ।
उ. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ पृष्ठ १।